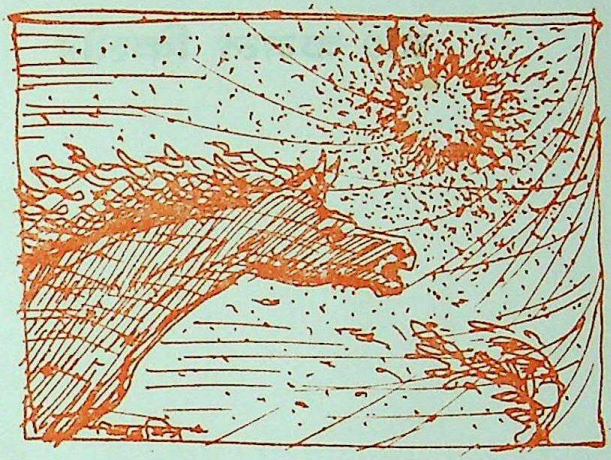
बृहदारण्यकोपनिषद्

(काव्यान्तर)

डॉ. कमल किशोर





बृहदारण्यकोपनिषद्

काव्यान्तर

□

□

□

डॉ० कमल किशोर

बी. एस-सी. (ऑनर्स); एम. बी. बी. एस.

कॉपी राइट : 1994
डॉ० कमल किशोर

प्रकाशक	श्री त्रिलोचन ज्ञान-विज्ञान संस्था 55, शरत बोस रोड कलकत्ता - 700025
आवरण	श्री विश्वमित्र वासवाणी
मुद्रक	श्रीमती रश्मि सत्यार्थी शारदा प्रेस, ग्वालियर-9
संस्करण	प्रथम : 1000 प्रतियाँ
मूल्य	साठ रुपये

समर्पण

●

पूज्य पिताजी

स्व० श्री त्रिलोचनदास जी, एम. ए.

[जन्म : 12 जून, 1890 / देहावसान : 14 दिसम्बर, 1974

शिक्षा के प्रति समर्पित सहज - सरल जीवन]

की पुण्य स्मृति में सादर समर्पित—

—कमल किशोर

अनुक्रम

☐ ग्रंथ - परिचय : 1

☐ प्रथम अध्याय :
- प्रथम ब्राह्मण 8
- द्वितीय ब्राह्मण 11
- तृतीय ब्राह्मण 19
- चतुर्थ ब्राह्मण 27
- पंचम ब्राह्मण 37
- षष्ठम् ब्राह्मण 43

☐ द्वितीय अध्याय :
- प्रथम ब्राह्मण 45
- द्वितीय ब्राह्मण 53
- तृतीय ब्राह्मण 55
- चतुर्थ एवं पंचम ब्राह्मण 62
- षष्ठम ब्राह्मण 72

☐ तृतीय अध्याय :
- प्रथम ब्राह्मण 74
- द्वितीय ब्राह्मण 79
- तृतीय ब्राह्मण 85
- चतुर्थ ब्राह्मण 87
- पंचम ब्राह्मण 90
- षष्ठम् ब्राह्मण 92
- सप्तम ब्राह्मण 95
- अष्टम ब्राह्मण 103
- नवम् ब्राह्मण 108

☐ चतुर्थ अध्याय :
- प्रथम ब्राह्मण 118
- द्वितीय ब्राह्मण 127
- तृतीय ब्राह्मण 129
- चतुर्थ ब्राह्मण 137

● ● ●

श्री त्रिलोचन ज्ञान - विज्ञान संस्था

55, शरत बोस रोड, कलकत्ता – 700025

●

आमुख

हमारी संस्था अनेक वर्षों से आध्यात्मिक ज्ञान - विज्ञान प्रचार हेतु निरन्तर कार्यरत है। प्रथम प्रकाशन 'गीता प्रकाश'—जिसमें संस्कृत के मूल श्लोक, उनकी उच्चारण पद्धति, अर्थ, सभी का समन्वय है तथा संस्कृत व्याकरण और गीता के शब्दों का कोश भी संकलित है—पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुआ है।

उपरोक्त प्रकाशन की लोकप्रियता से उत्साहित हो हम डॉ. कमल किशोर द्वारा लिखित 'बृहदारण्यकोपनिषद्' का हिन्दी काव्यान्तर पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। इस काव्यान्तर में केवल चार अध्याय हैं, जबकि मूल ग्रन्थ में छः अध्याय हैं। लेखक के मतानुसार—अध्याय पाँच और छः खिल अध्याय हैं और उनमें वही भाव दोहराये गये हैं, जो पहले चार अध्यायों में वर्णित हैं, तथा अध्याय पाँच और छः में कुछ अश्लील प्रसंग हैं, जो आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्णतया अनुपयोगी हैं। लेखक का मत प्रसिद्ध जर्मन विद्वान मैक्समूलर के अनुरूप है। श्री मैक्स-मूलर ने प्रथम चार अध्यायों का अनुवाद अंग्रेजी में किया और शेष दो अध्यायों की कम उपयोगिता की ओर देखते हुए इनका अनुवाद लैटिन भाषा में किया। वंश ब्राह्मण और याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद दो बार वर्णित हैं। हिन्दी काव्यान्तर में इनका एक बार ही उल्लेख है। इससे पुस्तक की उपयोगिता किसी भी प्रकार कम नहीं होती।

उपरोक्त पुण्य कार्य के लिये हमें आर्थिक सहायता—

'सेठ बलदेव शाह चैरिटेबल ट्रस्ट'

55, शरत बोस रोड, कलकत्ता – 700025 से प्राप्त होती है। संस्था ट्रस्ट के प्रति आभारी है।

—कृष्ण किशोर

सेक्रेटरी

श्री त्रिलोचन ज्ञान - विज्ञान संस्था

निवेदन

बृहदारण्यकोपनिषद् एक प्राचीन और महान् ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें आधुनिकतम भौतिक विज्ञान के बीज अर्थात् आधारभूत सिद्धान्त विद्यमान हैं। इन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप अध्यात्म चिन्तन प्रतिपादित किया गया है। इस ग्रन्थ में विज्ञान और अध्यात्म एक रूप हैं।

इस महान् ग्रन्थ का काव्यरूप प्रस्तुत करने की धृष्टता कर रहा हूँ। विद्वान पाठक इस धृष्टता के लिये मुझे क्षमा करेंगे। जैसा कि स्वाभाविक है, इस कार्य में यद्यपि मेरा प्रयास यही रहा कि काव्यान्तर मूल के अनुरूप ही हो, किन्तु फिर भी कुछ भाव सहज ही जुड़ गये हैं, कुछ छूट गये हैं। इस प्रकार इस कृति का उपनिषद् से उतना ही सम्बन्ध है, जितना रामचरित मानस का बाल्मीकि रामायण से है, किन्तु मेरी अक्षमता का मुझे ज्ञान है। गोस्वामी तुलसीदास के तुल्य तो मैं हूँ भी नहीं, हो भी नहीं सकता, किन्तु संत की करनी से प्रेरणा प्राप्त करने का अधिकार तो प्रत्येक व्यक्ति को है। अतएव एक बार फिर उन्हीं के शब्दों में विनय करता हूँ

'छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बाल वचन मन लाई॥'

सुप्रसिद्ध कवि एवं समीक्षक **डॉ. पूनमचन्द्र तिवारी** ने भूमिका लेखन द्वारा पुस्तक को पूर्णता प्रदान की।

डॉ. शिवशरण शर्मा द्विवेदी ने पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढ़कर अनेक संशोधन किये, भाषा को परिमार्जित किया तथा नपे - तुले शब्दों में मुझे बार-बार उत्साहित किया।

प्रसिद्ध आर्य - विद्वान **श्री भारत भूषण त्यागी** ने अपनी अमूल्य सम्मति द्वारा पुस्तक की सारगर्भिता को साकार रूप दिया।

इस पुस्तक की सुरुचिपूर्ण मुद्रण-प्रस्तुति **श्रीमती रश्मि सत्यार्थी** एवं **श्री शैवाल सत्यार्थी** की अथक लगन का परिणाम है।

आवरण पृष्ठ की निर्दोष चित्र सज्जा प्रसिद्ध रंगकर्मी **श्री विश्वमित्र वारुवाणी** की देन है। एक ही चित्र द्वारा उन्होंने कालिमामयी मृत्यु, आकाश, आकाश की ऊर्जा, सौर्यमण्डल की रचना—सभी का चित्रण कर दिया है।

उपरोक्त सभी महानुभावों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

—कमलकिशोर

भूमिका

बृहदारण्यक उपनिषद् का – डॉ. कमलकिशोर द्वारा प्रस्तुत यह 'काव्यान्तर' हिन्दी - काव्य - जगत में – एक अनूठा और आद्यन्त, सहज, सरल, सुबोध तथा भाषायी शील एवं शिल्प में एकदम सुलझा हुआ काव्य-रूप है। ब्रह्म विद्या के इतने गम्भीर और सूत्रबद्ध ज्ञान को, आज की वैज्ञानिक - औद्योगिक और आर्थिक-प्रपंचों की एवं अनैतिक आचरणों से त्रस्त शुष्क भाव-भूमि पर – अमृत वर्षा जैसा – विकीर्ण करने की यह क्षमता स्पृहणीय है, अनन्य है। ऐसे प्रयास संभवतः मनुष्य के अपने न होकर उस ब्रह्म की ही प्रेरणा से संभव होते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् का यह न शब्दशः काव्यानुवाद है, न भावानुवाद है, बल्कि यह बृहदारण्यक का स्वच्छन्द काव्य-राग है। छन्द का शिथिल अनुशासन और विषय-वस्तु के अनुरूप क्लिष्ट शब्दों के चुनाव से दूर रह कर, कृतिकार ने इस 'काव्यान्तर' को सामान्य जन की पहुँच में ला दिया है। यही इसकी बड़ी उपलब्धि है। इसमें काव्य-शिल्प के मानक अनुबन्धों का बोझ नहीं है। तत्व को वहन करने वाली इसकी सीधी-सादी भाषा में जो शीलवान ऊर्जा है, वह धार्मिक-साहित्य का काव्यानुवाद करने वाले हिन्दी के मनीषियों के लिये एक स्तुत्य आदर्श उदाहरण है, साथ ही, चुनौती भी है। इसमें मूल ग्रन्थ की छवि सुरक्षित है। आध्यात्मिक स्थापनाओं की रक्षा हुई है। इस सहज और प्रशान्त अभिव्यक्ति से ब्रह्म-विद्या का सही बोध हो सका है। यही भाषा और अभिव्यक्ति की सिद्धि है, श्रेयस है।

मैं इस काव्य - प्रयास के लिये परम विद्वान डॉ कमल किशोर को साधुवाद तो देता ही हूँ, साथ ही, उनकी इस ऋषि-चेतना से स्पंदित होकर उनका ऋण भी मानता हूँ।

भारत में उपनिषदों का प्रणयन विश्व के समस्त दार्शनिक और धार्मिक, साहित्य में उपलब्ध ज्ञान भंडार में सर्वश्रेष्ठ है। ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म, पंचतत्व, लोक-परलोक, मृत्यु, पुनर्जन्म, प्राण, मोक्ष आदि अनेक गूढ़ तत्वों का इतना गम्भीर मन्थन संसार के किसी साहित्य में नहीं। वेदों के यह शीर्ष हैं। वेदान्त हैं। आज से हजारों वर्ष पूर्व हमारे ऋषि - मुनि, राजन्य वर्ग, चिन्तक और साधक – अरण्यों में, आश्रमोंमें, एकान्त में तपस्यारत रहकर जीवन और उसके कारक तत्वों के विषय में तथा इस जीव-सृष्टि के कारण रूप आशयों एवं ब्रह्म की मूल पहचान के लक्षणों को किस गहराई से और किस सूत्रबद्ध भाषा में सोचते तथा अभिव्यक्त करते थे—उनके सवाद, उनकी समझ, उनकी पैठ कितनी तल-स्पर्शी थी, इसका लोहा आज सारा विश्व मानता है।

यदि हम समझ लें कि यह जगत, यह सृष्टि, यह जीव-सृष्टि – मूलतः 'एकोऽहं बहुस्याम' की इच्छा का परिणाम है—संपूर्ण जगत तत्वतः एक है ; चैतन्यमय है; यह ससीम और असीम, सादि और अनादि, और सान्त तथा अनन्त का भेद मिथ्या है; तो विश्वात्मभाव और सर्वात्मभाव सरलता से ग्रहण योग्य बन जाते हैं।

हमारे उपनिषदों में ब्रह्म का ज्ञान, मानव की बौद्धिक चेतना का चरम आदर्श है। इस प्रत्यक्ष सत्य, ब्रह्म का ज्ञान ही उपनिषदों का लक्ष्य है। इसी ज्ञान को पाकर ऋषियों ने 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' कहा, फिर स्वयं की ओर देखकर अहं ब्रह्मास्मि' कहा और फिर प्रत्येक को देखकर 'तत्वमसि' कहा। इसी सन्देश ने सभी साम्प्रदायिक भेदों को दूर कर दिया। आज तो विश्व-एकता के लिए इन उपनिषदों का सार-तत्व जानना अनिवार्य हो गया है।

भारत के ऋषि-मुनियों ने अनेक उपनिषद् रचे, जिनमें उपलब्ध 108 उपनिषदों में दस ही विशिष्ट हैं और उनमें भी बृहदारण्यक उपनिषद् अपने पीछे साठ पीढ़ियों का 'वंश ब्राह्मण' चिन्तन, अध्ययन, मनन, श्रम, तपस्या और परंपरा के साथ एक ऐसी वैज्ञानिक और अकाट्य तर्क-पद्धति छोड़ गया है कि इसे पढ़े बिना और इसका मर्म समझे बिना हमारा ब्रह्म-बोध और अध्यात्म का मूल स्वरूप जानना अधूरा ही होगा। ब्रह्म, आत्मा और सत्य का ऐसा मौलिक निरूपण अन्यत्र कहीं नहीं है। कहा है कि—'तदेतद् ब्रह्मपूर्वमन परमनन्तरम बाह्यभयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः' (2/5/19 बृ. उपनि.) अर्थात् वह यह ब्रह्म पूर्व और अपर —कारण और कार्य से रहित है। अन्तर-विजातीय द्रव्य से शून्य है और अबाह्य

है (बाह्य आदि के भेद से रहित है)। यह आत्मा ही सबका अनुभव करने वाला ब्रह्म है। ब्रह्म और आत्मा का इतना स्पष्ट निरूपण कहाँ मिलेगा ? यह बात आज से हजारों वर्ष पूर्व कह पाना कि जो देशकाल वस्तु परिच्छेद से रहित सर्वानुभव स्वरूप अपना आत्मा है, वही ब्रह्म है'— दिव्य दृष्टि का ही सूचक है।

लगता है कि शुक, वामदेव, त्रिशंकु और याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों ने ब्रह्म का साक्षात्कार अवश्य किया होगा। तभी तो वह इस ब्रह्म-विद्या में इतने गहरे उतर सके। वे ज्ञानमार्ग की साधना में अद्वितीय ब्रह्म की धारणा और ध्यान में डूबे हुए महान् साधक और चिन्तक थे। वे सच्ची मुक्ति के साधक थे। श्रुति में कहा गया है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति'—बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। याज्ञवल्क्य ने तो मोक्ष को भी नकारा है। वे कहते हैं—'ब्रह्मज्ञान ही मनुष्य की परम गति है।'

सभी जानते हैं कि वेदों के तीन भाग हैं—उपनिषद्, मंत्र भाग और ब्राह्मण भाग। ये उपनिषद् ही ज्ञानकाण्ड के प्रकाशक हैं। यह उपनिषद् ही ब्रह्म-विद्या के स्रोत हैं। इनमें तत्व केवल ब्रह्म है और वही सत्य है। बृ. उपनिषद् 1-4-10 में कहा गया है कि—

'पहले वह ब्रह्म ही था। उसने अपने को ही जाना कि मैं ब्रह्म हूँ, अतः वह सर्व हो गया। उसे देवों और ऋषियों में से जिस-जिसने जाना, वही तद्रूप हो गया।'

इसी बृ. उपनिषद् में कहा गया है कि—'योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।' (बृ. उप. 4/4/6) अर्थात् जो अकाम, निष्काम, आप्तकाम और आत्मकाम होता है—उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता—वह ब्रह्म ही होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

इसी बृहदारण्यक उपनिषद् में कहोल के 'सर्वान्तर आत्मा' सम्बन्धी जिज्ञासा के उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा कि जो क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा और मृत्यु से परे है, वह तेर आत्मा सर्वान्तर है।' बृ. उप. 3/5/1

तात्पर्य यह कि ब्रह्म विद्या का, ज्ञान का, या पराविद्या का ऐसा निरूपण अन्यत्र नहीं मिलता। बृहदारण्यक उपनिषद् में जहाँ ब्रह्म-ज्ञान को ही मोक्ष कहा है, वहीं मानव को महामानव बनने की साधना का निरूपण भी किया है।

डॉ. कमल किशोर ने बृहदारण्यक उपनिषद् के प्रथम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण का जो काव्यमय अनुवाद किया है, वह इतना सुलझा हुआ है कि मूल अंश का कठिन सूत्र, भागीरथी की प्रवाहमयी पुण्य धारा-सा आगे बढ़ते-बढ़ते सुतीर्थ बन गया है। क्रमानुसार कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है—

'सर्वदा ही गतिमयी, अश्वरूपा है मही।
आदि इसका अन्त इसका, है गीत एक अनन्त का।'

'द्युलोक, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष,
दिशाएँ, उपदिशाएँ, कालखण्ड।
वर्षा विद्युतमय घनमण्डल,
शब्द वहन करता वायुमंडल।
पर्वत वनस्पति तथा मरुस्थल,
इस अश्व के ही अंग प्रत्यंग।'

द्वितीय ब्राह्मण में 'नैवेह किञ्चिनाग्र आसीत्' सूत्र की गम्भीर, कठिन तथा पठनीय पंक्तियों का काव्यरूप मोती जैसा स्वच्छ दिखाई देता है—

'आरम्भ में कुछ भी नहीं था,
जो 'कुछ नहीं था' मृत्यु था।
'मृत्यु' ही तो एक ऋत था,
वह निरन्तर कार्यरत था।'

'अशनायया मृत्युना एव इदम् आवृतम्' के द्वारा ऋषि ने स्पष्ट किया है कि बुभुक्षा स्वरूप मृत्यु से ही यह विश्व आच्छादित था। 'अशनाया ही मृत्यु है' अर्थात् 'क्योंकि बुभुक्षा ही मृत्यु है' कह कर ऋषि ने कहना चाहा है कि भूख हर जड़-चेतन में विद्यमान है और सभी कुछ इसी भूख का आहार है। मृत्यु की इस भूख से सृष्टि बनी और यही मृत्यु की भूख इस सृष्टि को खा जाती है। आश्चर्य तो यह है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व याज्ञवल्क्य ने विज्ञान की अधुनातन स्थापनाओं को कितने सहज और दार्शनिक आवरण में कह दिया था। उन्होंने कहा था कि आकाश की ऊर्जा से पृथ्वी बनी। तत्व जो मात्र वायुपिण्ड था—मृत्यु के श्रम से आदित्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वी में बँट गया। वायुमण्डल बना। संसार शब्दमय बना। पृथ्वी शीतल हुई। पशुओं तथा प्रजाओं का निर्माण हुआ। पृथ्वी रूपी अश्व गतिशील हुआ और मेध्य (पवित्र) हुआ। जीव सृष्टि और सम्बत्सर पृथ्वी की विशेषता है। अन्य लोकों में केवल अग्नि है। डॉ. कमलकिशोर ने सृष्टि-रचना वाले गूढ़ रहस्य के पाठ 'स त्रेधाऽऽत्मानं व्यकुरुताऽऽदित्यं तृतीयं

वायुं तृतीयं स एष प्राणस्त्रैधा विहितः' (2/3) को इस प्रकार सरल बनाकर काव्य में ढाला है—

'वह तत्व वेगवान था, धधकता जाज्वल्यमान था,
इसे तेजोरस है कहा, और वह बटने लगा।
वह तीन भागों में बटा, तीसरा ही आदित्य था,
तीसरा ही अन्तरिक्ष था, और तीसरा ही अग्नि था।
कौन पहला दूसरा, यह नहीं हमको पता,
एक क्षण में यह सब घटा, यह कार्य था विस्फोट का।
और यह सृष्टि घूमती रही, दिशायें निर्धारित हुईं,
बात इतनी होगई, पर मृत्यु भूखी ही रही।'

याज्ञवल्क्य ने सिद्ध कर दिया कि मृत्यु ही उत्पन्नकर्त्ता और भोक्ता है। तीसरे ब्राह्मण में देवासुर संग्राम, क्रांति, क्रांति की असीम शक्ति और सामाजिक विघटनों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि 'प्राण ही आंगिरस है। यह प्राण ही ब्रह्म है।'

आगे बृहदारण्यक उपनिषद् में मानवी सभ्यता के विकास की कथा, पुरुष और स्त्री में जीव का विभाजन, अग्नि, कृषि और वर्ण-व्यवस्था के विकास का वैज्ञानिक विवेचन करते हुये नामरूप और कर्म के आधार पर सभी प्राणियों का एक-दूसरे से अलग होना बताया गया है।

दूसरे अध्याय में बालाकि गर्ग और काशी-नरेश अजातशत्रु के संवाद के माध्यम से सिद्ध किया गया कि प्राण ही ब्रह्म है। प्राण ही सत्य है— यही चिरन्तन सत्य है। 'यही उपनिषदों का सत्य का सत्य है।' संसार को ब्रह्म की रंगशाला कहा। ब्रह्म को नेति-नेति कहते हुए कहा कि – 'मात्र वह ऐसा नहीं। मात्र वह इतना नहीं।'

चौथे-पाँचवें ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को आत्मज्ञान दिया है। इस कठिन गूढ़ प्रसंग को कवि डॉ. कमलकिशोर ने काव्यान्तर में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

'लवण खण्ड ज्यों जल में होते लीन,
उसी रूप में उनको ढूँढना अर्थविहीन।
लवण का स्वाद लवण का प्रमाण,
ऐसे ही जानो आत्मा अनन्त अपार।'

सच तो यह है कि इस ब्रह्म से परे कुछ भी नहीं है।

तृतीय अध्याय में राजा जनक की सभा में अश्वल, आर्तभाग, उषस्त, चाक्रायण, कहोल, उद्दालक और गार्गी के प्रश्नों के याज्ञवल्क्य ने संतोषजनक

उत्तर दिये हैं। आर्तभाग ने ग्रह-अतिग्रह पर चर्चा की। याज्ञवल्क्य ने शरीर के अंग-प्रत्यंगों को ग्रह और जिस कार्य के लिये वह बने हैं, वही उनके अतिग्रह बतलाये। यह भी प्रस्थापना की कि प्राण कभी नहीं मरता। शव के चारों ओर प्राण ही प्राण है। शव में भी प्राण रहता है। जब चाक्रायण ने पूछा कि ब्रह्म कौन है? कैसा है? कहाँ है? तब याज्ञवल्क्य ने जो कहा, उसे काव्यरूप में डॉ. कमलकिशोर ने बड़े ही सरल शब्दों में व्यक्त किया है—

'जो प्राण और अपान है, जो उदान और व्यान है,
वही प्रत्यक्ष परब्रह्म है, सर्व व्यापी आत्म तत्व है।'

इसी प्रकार कहोल के, आत्मा के स्वरूप सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'आत्मा, भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु से परे है।' उन्होंने आत्मा को अन्तर्यामी कहा है। गार्गी के प्रश्न के उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा कि 'संसार आकाश से ओतप्रोत है और आकाश अक्षर ब्रह्म से ओतप्रोत है।'

चतुर्थ अध्याय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। याज्ञवल्क्य ने इस अध्याय में पुनर्जन्म और लोक-परलोक को मिथ्या कहा है और ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति को ही मोक्ष का मार्ग बताया है। वे कहते हैं—

'राजन्! न भ्रम हो परलोक का,
मन में न हो भय नरक लोक का।'

याज्ञवल्क्य ने बृहदारण्यक उपनिषद् में 'अभय-ब्रह्म' की स्थापना की है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'सभी ज्योति इसी आत्मा के आधीन' हैं—'ब्रह्म-ज्ञान ही मनुष्य की परम गति है।' वे कहते हैं—

'परलोक है मात्र स्वप्न संसार!'
'ब्रह्म होता है ब्रह्म में लीन, नहीं यह आवागमन के आधीन।
जो जन्म लेता है एक बार, नहीं उसका जन्म दूसरी बार।'

डॉ. कमलकिशोर ने बृहदारण्यक उपनिषद् का इतना सरल काव्य-रूप जन-सामान्य को सुलभ कराया, इतना श्रम किया, साधना की—इस 'सर्वजन-हिताय' और स्वयं भी उस ब्रह्म के आनन्द स्वरूप को आस्वाद्य करने की उनकी स्वेच्छा को मैं बहुमूल्य मानता हूँ।

ईश्वर करे वह चिरायु हों। उनका यह 'काव्यान्तर' अमर हो।

—(डॉ.) पुनमचन्द्र तिवारी
एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत), पी एच. डी.
पूर्व-विभागाध्यक्ष, शास. महाविद्यालय

81-सी, जवाहर कॉलोनी
ग्वालियर (म. प्र.)

ग्रंथ - परिचय

भारतीय उपनिषद् साहित्य के अन्तर्गत 108 उपनिषदों का वर्णन है। इनको तीन भागों में विभाजित किया गया है—

1. ज्ञान खण्ड।
2. ब्रह्म विद्या खण्ड।
3. साधना खण्ड।

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य, श्री रामानुज, महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानन्द जी तथा गायत्री परिवार के प्रणेता श्रीराम शर्मा आचार्य केवल ज्ञान खण्ड को ही प्रमुख मानते हैं। श्रीराम शर्मा आचार्य ने 108 उपनिषदों का संकलन किया है, कल्याण के उपनिषद् अंक में 103 उपनिषदों का हिन्दी अनुवाद है तथा अनेक विद्वानों के लेख हैं।

ब्रह्म विद्या खण्ड में प्राणायाम की विविध क्रियाओं का उल्लेख है। साधक अभ्यास द्वारा ही उनमें पारंगत हो सकता है। साधना खण्ड में इष्टदेव के प्रति समर्पण भाव का महत्व है। यह भी व्यक्तिगत निष्ठा पर ही आधारित है।

वर्तमान में ज्ञान खण्ड को ही विशेष महत्व दिया जाता है। इनके ही उद्धरण विविध विचारधाराओं के समर्थन में प्रस्तुत किये जाते हैं। यह उद्धरण श्रुति तुल्य माने जाते हैं।

इस समस्त उपनिषद् साहित्य में बृहदारण्यकोपनिषद् का एक अपना विशिष्ट ही स्थान है। इसकी आकृति सब उपनिषदों की अपेक्षा बड़ी है, इसलिये यह 'वृहद' है। इसका आरण्यक विशेषण इस बात का द्योतक है कि एकान्त में, वन में पूर्ण एकाग्रता से यह चिन्तन किया गया है। उपनिषदों को 'आरण्यक' संज्ञा यही ग्रंथ प्रदान करता है।

इस ग्रन्थ का चिन्तन किसी एक व्यक्ति के विचारों पर आधारित नहीं है। यह एक पीढ़ी में लिखा गया ग्रन्थ भी नहीं है। एक या दो शताब्दी के विचारकों की भी यह रचना नहीं है। इसमें वर्णित 'वंश ब्राह्मण' का यह स्पष्ट संकेत है कि इसकी पृष्ठभूमि में साठ पीढ़ियों का निरन्तर चिन्तन है। एक पीढ़ी की काल अवधि यदि तीस वर्ष मानी जाय, तो इस चिन्तन को परिपक्व अवस्था तक विकसित करने में 1800 वर्षों का समय अर्पित हुआ है। इतना घोर परिश्रम, इतना सतत गहन चिंतन किसी भी विषय के प्रति संसार में कहीं भी नहीं हुआ है। इसी महान् ऋषि परम्परा की देन यह अमूल्य ग्रंथ है।

यह आर्ष अध्यात्म का मूल स्वरूप है, यह मानव सभ्यता के अग्रदूत आर्यों का आदि चिन्तन है। यह अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने वाले वीर हुतात्माओं की विचारधारा है।

विचारणीय विषय है कि उपर्युक्त विचारधारा का, सतत चिंतन का उद्देश्य क्या है? इसका भी स्पष्टीकरण इसी ग्रंथ में है। यह चिन्तन मानव-मन को पूर्णतया भय-मुक्त करने के लक्ष्य के प्रति समर्पित है। किसी भी प्रकार का अन्ध-विश्वास जनित भय मानव-मन को त्रास न दे, किसी भी प्रकार का भ्रम मानव की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध न करे, कोई मिथ्या विचार सिद्धांत का स्वरूप न धारण करे, यही इस चिन्तन का एकमात्र लक्ष्य है।

जिस प्रकार भौतिक विज्ञान का प्रतिपादन करते हुए लेखक संबंधित विषय में **ईश्वर** का नामोल्लेख भी नहीं करते और तर्कसंगत विषय का प्रतिपादन सहज रूप से होता है, उसी प्रकार इस उपनिषद् में अध्यात्मज्ञान से संबंधित सभी विषयों का ईश्वर के माध्यम के बिना ही प्रतिपादन किया गया है। कहीं-कहीं पर भाष्यकारों द्वारा समुद्र तथा मृत्यु को ही ईश्वर कहा गया है, जो कि सन्दर्भानुसार नहीं है और केवल भाष्यकार के विचारों को ही प्रतिबिम्बित करता है। इस ग्रन्थ में कहीं पर ईश्वर शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है।

लोक परलोक— आज संसार के सभी धर्म मानव के हृदय में लोक परलोक स्वर्ग-नरक के एक कल्पना जगत का निर्माण करते हैं। मनुष्य को कर्मानुसार स्वर्ग-नरक की प्राप्ति होती है, इसे एक स्वयंसिद्ध सिद्धांत के रूप में बार-बार कहा जाता है। उपनिषद् के अनुसार परलोक का कोई अस्तित्व ही नहीं है। व्यक्ति जो स्वप्न में देखता है, वही परलोक है।

"अब पुनः जिस स्वप्नावस्था में प्रतीत होता है कि इस पुरुष को कोई मार रहे हैं। मानो कि कोई इसको वश में ला रहे हैं। मानो कि कोई हाथी

इसको चारों तरफ भगा रहा है। मानो यह गड्ढे में गिर रहा है अर्थात् जागता हुआ यह पुरुष जिस भय को देखता है उसी को यह अविद्या के कारण सत्य मानता है और जिस स्वप्नावस्था में 'मैं देव के समान हूँ, मैं राजा के समान हूँ, मैं ही सर्व हूँ ऐसा मानता है—वह उसका परलोक है।

(याज्ञवल्क्य-जनक संवाद—चतुर्थ अध्याय, तृतीय ब्राह्मण, कण्डिका-२०)

ग्रह-नक्षत्र :

इस विषय में भी ऋषि याज्ञवल्क्य का दृष्टिकोंण स्पष्ट है। तृतीय अध्याय के दूसरे ब्राह्मण में ऋषि आर्तभाग ने प्रश्न किया—

'हे याज्ञवल्क्य कितने ग्रह और कितने अतिग्रह हैं ?'

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि आठ ग्रह है, घ्राण, वाणी जिव्हा, चक्षु, कान, मन, हाथ तथा त्वचा, और जिस कार्य से यह ग्रहित हैं, वही उनका अतिग्रह है। स्पष्ट संकेत है कि मनुष्य के कार्यरत अंग-प्रत्यंग ही मनुष्य के भाग्य का निर्णय करने में समर्थ हैं। अकर्मण्यता ही सारे दुःखों का कारण है। अन्तरिक्ष में भ्रमण करने वाले ग्रह नक्षत्र मनुष्य के भाग्य का निर्णय करने में असमर्थ हैं।

मृत्यु-का भय सभी प्राणियों के हृदय में सदा ही समाया रहता है। याज्ञवल्क्य के मतानुसार विशाल ब्रह्माण्ड में, आदि में कुछ भी नहीं था। जो कुछ भी नहीं था, उसे ऋषि मृत्यु कहते हैं, किन्तु यह मृत्यु निष्क्रिय नहीं थी, इसमें असीम कार्य क्षमता थी। इस असीम कार्य क्षमता को ऋषि मृत्यु की क्षुधा, बुभुक्षा तथा अशनाया कहते हैं। यह अशनाया इतनी प्रबल थी कि यह स्वयं ही अव्यक्त मृत्यु का व्यक्त रूप हो गई।

'अशनाया हि मृत्यु।'

यहाँ पर मृत्यु की अशनाया अर्थात् कार्यक्षमता का वर्णन करते हुए ऋषि लिखते हैं कि यह अशनाया तप करने लगी, अर्चना करने लगी और उसने आकाश का निर्माण किया।

इसके उपरान्त आकाश की जो ऊर्जा थी, वह एकत्रित हुई और पृथ्वी तत्व में परिणत हुई, फिर वह बड़े वेग से घूमने लगी। यह ऊर्जा पिण्ड इतनी तीव्र गति से घूम रहा था कि अपनी गति के कारण यह स्वतः ही जलने लगा और उसे तेजोरस कहा गया और यह एक विस्फोट के कारण तीन भागों में बँट गया—आदित्य, अन्तरिक्ष, अग्नि। अपनी पृथ्वी की प्रथम संज्ञा अग्नि ही है।

धीरे-धीरे यह पृथ्वी शीतल हुई, इसे निश्चित आकार मिला और फिर इस पर जीव सृष्टि का निर्माण हुआ।

इस प्रकार मृत्यु की कार्यक्षमता ही सृष्टि की निर्मात्री है और प्रत्येक प्राणी के शरीर में विद्यमान है। जब यह प्राणी चलता रहता है, तब भी यह कार्य करती रहती है और उसके अचल होने पर यह फिर उसी शव द्वार पंच तत्व का पोषण करने में रत हो जाती है।

इतने सरल और स्पष्ट रूप से मृत्यु को एक प्रेरणादायक तत्व के रूप में चित्रित किया गया है कि यदि मनुष्य इस प्रकार से विचार करे तो सर्वथा भय हीन हो जाता है। मृत्यु का ऐसा वर्णन किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं है।

पुनर्जन्म को भी ऋषि विज्ञान सम्मत नहीं मानते हैं। (1) मैत्रेयी के साथ संवाद करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं। (अ० 2, ब्रा० 4, कं० 12/13)

"अरे मैत्रेयी, यह इन महाभूतों से ही उठकर इन्हीं में विनष्ट हो जाता है। मरकर इसका ज्ञान व नाम नहीं रहता है। अरे मैत्रेयी, ऐसा मैं कहता हूँ।

वह मैत्रेयी बोली 'मर कर प्रथक संज्ञा नहीं रहती। यहाँ ही श्रीमान् ने मुझको मोहित किया है।'

तब वह याज्ञवल्क्य बोले कि "अरे मैत्रेयी, मैं मोहवश नहीं कहता हूँ। निश्चय अरे ! विज्ञान के लिये यही पर्याप्त है।

(2) आर्तभाग ने जब प्रश्न किया कि 'जिस काल में जब यह पुरुष मरता है, तब उसका प्राण ऊपर जाता है या नहीं' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया 'नहीं, नहीं, प्राण यहां ही लीन हो जाते हैं। यह विवेकीजन आनन्द में भर जाता है और आनन्द से पूर्ण मूर्च्छित के समान मानो सोता रहता है। (अ० 3, ब्रा० 2, कं० 11)

(3) राजा जनक से संवाद करते हुए भी ऋषि ने यही कहा कि मृत शरीर के चारों ओर प्राण ही तो है। यह प्राण प्राण में ही समा जाता है, कहीं आता जाता नहीं है।

इस सारे ग्रन्थ में ऋषि ने प्राण की सर्वव्यापकता का अत्यन्त दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन किया है।

लौकिक भाषा में यह कहा जाता है कि शव में प्राण नहीं होता, किन्तु यदि हम प्राण को सर्वव्यापी मानते हैं तो यह कहना कि साढ़े तीन हाथ के शरीर में प्राण नहीं है, किसी भी प्रकार तर्क संगत नहीं है।

उपर्युक्त स्वयं सिद्ध तथ्यों को ग्रहण करने के उपरान्त भी, जीवन में सत्कर्म करते हुए भी बारम्बार मनुष्य इस समस्या का समाधान चाहता है कि क्या यही जीवन का उद्देश्य है ? क्या यही सब कुछ है ? निश्चित रूप से आज का मनुष्य प्राणी जगत की सर्वश्रेष्ठ रचना है। जीव सृष्टि में निरन्तर विकास के ही कारण यह स्थिति मनुष्य को प्राप्त हुई है। यह स्थिति आज के युग में सर्वोच्च होते हुए भी अन्तिम नहीं है। विकास क्रम अभी भी निरन्तर चल रहा है। यही विकास क्रम व्यक्ति को मानव से महा-मानव बनने के लिए प्रेरित करता है। भारतीय अध्यात्म की शब्दावली के अनुसार मनुष्य अपने मोक्ष के लिये प्रयत्नशील है।

याज्ञवल्क्य के विचारों को भलीभांति श्रवण कर महाराज जनक ने पूछा कि मोक्ष के विषय में आपका क्या विचार है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने बार - बार राजा जनक को लोक-परलोक की भावना पुनर्जन्म की धारणा को विज्ञान सम्मत न बताते हुए प्राण की अमरता, सर्व व्यापकता तथा आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया और इन्हीं तत्वों में से मोक्ष का मार्ग खोजने की राजा को प्रेरणा दी, किन्तु राजा का समाधान नहीं हुआ।

इस स्थिति में ऋषि भयभीत हो गये कि 'मेधावी राजा जनक ने मुझे सब तत्वों से शून्य कर दिया है, सब धन भी दे दिया है, किन्तु अभी भी इसके भ्रम का निराकरण नहीं हुआ।'

ऋषि ने यहाँ ब्रह्मवेत्ता पुरुष के व्यवहार का वर्णन किया। जीवन की महानतम उपलब्धियाँ इसी प्रकार की जीवन - चर्या द्वारा प्राप्त हुई हैं। यही ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग है और ब्रह्म ज्ञान (सर्वव्यापी प्राण का ज्ञान) ही मोक्ष है, यही जीवन का परम आनन्द है।

पुनर्जन्म में विश्वास किया जाय अथवा न किया जाय, यह एक गौण विषय है। मुख्य विषय ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति है। सौ बार जन्म लेकर भी मनुष्य ब्रह्म ज्ञान ही तो प्राप्त करेगा। अतएव इसी शरीर में, इसी जन्म में ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त किया जाय। यह याज्ञवल्क्य की विचारधारा का मूल सूत्र है।

जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म अर्थात् सर्वव्यापी प्राण की कोई सीमा नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्म ज्ञान की भी कोई सीमा नहीं। अतएव ब्रह्म का जिज्ञासु किन

ऊँचाइयों को प्राप्त करता है, उसका चिन्तन कितनी गहराइयों में उतरता है, तथा कितना महान् होता है, इसकी भी कोई सीमा नहीं है।

यही मानव के महामानव बनने का मार्ग है। यह याज्ञवल्क्य द्वारा 'अभय ब्रह्म' का वर्णन है।

इसे सुनकर राजा जनक आत्म विभोर हो गये और उस अभय ब्रह्म के ज्ञान के प्रचार हेतु उनने अपना सारा मिथिला राज्य दान में दे दिया।

इसके अतिरिक्त इस उपनिषद् का शाश्वत प्रभाव हमारे जीवन पर है। हमारी सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना है—

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।

इसी उपनिषद् की देन है। सभ्यता के आदि से ही मनुष्य प्राण अर्थात् अक्षर ब्रह्म की खोज में रत है। बार-बार जब मनुष्य कुछ भी निश्चित करता है, और घोषणा करता है कि यही अन्तिम सत्य है, उसी क्षण मानवी जिज्ञासा पुनः प्रस्फुटित हो उठती है तथा मनुष्य को और खोज के लिये प्रवृत्त करती है। उदाहरणार्थ इस सदी के मध्य तक अणु अविभाज्य माना जाता था और अणु को विभाजित नहीं किया जा सकता, यही हमारे ज्ञान की चरम सीमा थी। अणु विभाजन ने सदियों से चली आ रहीं धारणाओं को निरस्त कर दिया। इसलिये ब्रह्म के विषय में 'नेति नेति आदेश' इसी उपनिषद् की देन है। ज्ञान की परिधि को विकसित करने वाला यह अनमोल मंत्र है।

ज्ञान के प्रति इतनी प्रबल जिज्ञासा, मानव के महामानव बनने की उत्कट अभिलाषा जाग्रत करते हुए भी यह ग्रंथ स्वप्न - लोक में विचरण को प्रश्रय नहीं देता, यह स्वीकार करता है कि देवासुर संग्राम जीवन की एक प्रत्यक्ष दिखने वाली वास्तविकता है। मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, किन्तु यह दो भागों में बँटा हुआ है : देव और असुर। असुर बलवान और धनवान होते हैं, देव बलहीन और धनहीन। असुर सदैव देवों का उत्पीड़न करते रहते हैं। असुरों से मुक्ति पाने के लिए देव जागरण के गीत गाते हैं, यज्ञ करते हैं, अनेक प्रकार के आयोजन करते हैं, किन्तु बार-बार असफल होते हैं। अन्त में देव प्राणोत्सर्ग हेतु तत्पर होते हैं और सफल

होते हैं। जागरण और प्राणोत्सर्ग क्रान्ति के मूल मंत्र हैं। अन्त में क्रांति के उद्-गाता ही स्वार्थरत होकर बिखर जाते हैं। इस ओर भी दुर्लक्ष्य नहीं किया गया है।

अग्नि का आविष्कार, कृषि की खोज, जाति व्यवस्था के निर्माण का वर्णन इसी ग्रंथ में है।

अजातशत्रु और बालाकि गर्ग का संवाद भी अद्भुत है। इसमें बहुत ही सरल ढंग से स्पष्ट किया गया है कि प्राण ही ब्रह्म है।

अन्त में, बृहदारण्यकोपनिषद एक महान् ग्रंथ है। इसके अध्ययन को मठों और मंदिरों तक ही सीमित न रखा जाय, इसके ज्ञान का प्रकाश प्रत्येक घर को आलो-कित करे। यह ग्राम के चौपाल में पढ़ा जाय, विश्वविद्यालयों में इसका अध्ययन हो। संसार के सभी प्राणी भय-मुक्त हों। ऋषियों की तपस्या से हम वंचित न हों, इसी हेतु इस ग्रंथ का सरल भाषा में काव्यांतर प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं, तथा मेरी अल्पज्ञता भी असीम है। फिर भी आशा करता हूँ कि विद्वान पाठक इस कृति के प्रति न्याय करेंगे। विद्वान मनीषी इस महान् ग्रंथ को लोकप्रिय बनाने की दिशा में प्रयत्न करेंगे।



प्रथम अध्याय : प्रथम ब्राह्मण

उपनिषद् का यह ब्राह्मण सृष्टि का वर्णन करता है। अश्व की उपमा से सृष्टि का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार अश्व की विशेषता उसकी गतिशीलता है, उसी प्रकार यह सृष्टि भी सदैव गतिमान है। सृष्टि की गति एक क्षण के लिये भी कभी नहीं रुकती। इसी समानता के आधार पर यह वर्णन किया गया है।

ऋषि का कवि-हृदय उषा को अश्व का शीर्ष, सूर्य को नेत्र. प्राण को श्वास तथा अग्नि को अश्व का मुख निरूपित करता है।

सृष्टि के सम्पूर्ण कार्य संवत्सरानुसार ही होते हैं। ग्रीष्म, वर्षा ऋतु एवम् वनस्पतियों का फलना - फूलना, सब संवत्सरानुसार, एक क्रमानुसार चलता रहता है, इसलिये यह संवत्सर विश्व की आत्मा कहा गया है। इसी आधार पर संवत्सर को प्रजापति भी माना गया है, कारण कि प्राणी और वनस्पति जगत समयानुसार ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं तथा परिपक्व होते हैं।

इस सृष्टि - रचना में सर्वप्रथम जीव का अवतरण समुद्र - तल पर हुआ। धीरे - धीरे प्राणी - जगत का विकास हुआ। मनुष्य का उद्भव हुआ। मानव अपने गुण - अवगुण सहित अनादि काल से यहाँ विचर रहा है। त्यागवादी देव, ध्वंसवादी असुर, भोगवादी गन्धर्व, अन्नवादी मनुष्य—सभी को यह अश्व ढो रहा है।

□□□

प्रथम ब्राह्मण

सर्वदा ही गतिमयी,
अश्वरूपा है मही ।
आदि इसका अन्त इसका ।
है गीत एक अनन्त का ।।
है सर्वदा गौरव भरा ।
गा रही है यह धरा ।।

जो उषा की अरुणिमा ।
सर्वदा ही अनुपमा ।।
शीष है इस अश्व का ।
जो है प्रतीक विश्व का ।।

किरण जिसकी है दिखाती ।
सृष्टि यह सुषमामयी ।।
जो सूर्य है आदित्य है ।
इस अश्व का वह नेत्र है ।।

श्वास इसका प्राण है ।
जिससे जगत यह व्याप्त है ।।

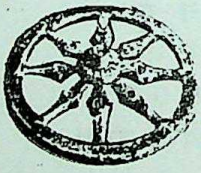
ज्वालमय मुख है खुला ।
भक्षण सभी का कर रहा ।।

दिन और रातों से गुथा ।
ऋतु और मासों से बना ।।
त्यौहार पर्वों से सजा ।
यह वर्ष आत्मा विश्व का ।।

द्युलोक, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष ।
दिशायें उपदिशायें काल खण्ड ।।
वर्षा विद्युतमय घन मण्डल ।
शब्द वहन करता वायु मण्डल ।।
पर्वत वनस्पति तथा मरुस्थल ।
इस अश्व के ही अंग-प्रत्यंग ।।

तब आ गई अनुपम घड़ी ।
गौरवमयी महिमामयी ।।
एक विलक्षण था वह क्षण ।
समुद्र में जीव का अवतरण ।।
न हुआ सूर्य में न चन्द्र में ।
न यह घटा किसी नक्षत्र में ।।
एक महान् आश्चर्य हो गया ।
न जाने वह कैसे हो गया ।।
अशरीरी शरीरी हो गया ।
प्राण देहधारी हो गया ।।

प्रगति होकर देवगण को ।
ध्वंस बन कर असुर जन को ।।
भोग होकर गायकों को ।
अन्न बनकर मानवों को ।।
इन सभी को ढो रहा ।
अश्व यह अद्भुत महा ।।



प्रथम अध्याय : द्वितीय ब्राह्मण

इस ब्राह्मण में सृष्टि रचना पर विचार किया गया है। सृष्टि रचना किस प्रकार हुई ? सृष्टि रचना किसने की ? इस प्रकार के अनेक प्रश्न मानव मन को उद्वेलित करते रहते हैं। जिस क्रम और व्यवस्था से यहाँ विचार किया गया है वैसा अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होता है।

उपनिषद् की विचारधारा को ग्रहण करने के लिये निम्नलिखित पंक्तियों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। यह पंक्तियाँ विचारणीय हैं, तथा मनन करने योग्य हैं। इनके विषय में गहन चिन्तन अभीष्ट है।

१. नैवेह किञ्चनाग्र आसीत्—

प्रारम्भ में यहां कुछ नहीं था। जो कुछ भी नहीं था, उसे ऋषि मृत्यु की संज्ञा देते हैं। वह मृत्यु निष्क्रिय नहीं था, वह निरन्तर कार्यरत था। मृत्यु की कार्यक्षमता को मृत्यु की क्षुधा कहा गया है। यह अव्यक्त मृत्यु का व्यक्त रूप था।

२. अशनायया मृत्युना एव इदम् आवृतम् + आसीत्—

बुभुक्षा स्वरूप मृत्यु से ही यह विश्व आच्छादित था।

३. अशनाया हि मृत्यु—

क्योंकि बुभुक्षा ही मृत्यु है।

यह सर्वविदित है कि बुभुक्षा अर्थात् भूख प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है। वही अदृश्य रूप से सबको कार्य में प्रवृत्त करती रहती है। भूख को शान्त करने के लिये प्राणी भिन्न - भिन्न प्रकार की क्रियाओं द्वारा भोजन प्राप्त करता है। जो कुछ वह प्राप्त करता है, वही वह प्राणी ग्रहण करता है अर्थात् भूख की शांति, मनुष्य जो प्राप्त करता है, उसी से होती है।

उपरोक्त तथ्य को स्वीकार कर लेने के उपरान्त एक और तथ्य हमारे सामने आता है। इस संसार में जो कुछ भी चर-अचर विद्यमान है, वह सब मृत्यु का आहार है।

जिस प्रकार हम स्वीकार करते हैं कि भूख की अदम्य प्रेरणा ही भोजन का निर्माण करती है। उसी प्रकार "मृत्यु की भूख" ही इस सृष्टि के निर्माण का कारण हेतु है। मृत्यु संसार को खा रही है, यह तो हम सब देखते हैं किन्तु मृत्यु जो कुछ खा रही है वह उसी के द्वारा ही निर्मित है इस तथ्य से हम अनभिज्ञ रहते हैं। इसी कारण संसार स्वरूप तया नश्वर तथा प्रवाहतया शाश्वत है।

इस प्रकार जब यहाँ कुछ भी नहीं था, तब मृत्यु संसार - रचना हेतु तत्पर हुई। संसार - रचना हेतु मृत्यु तप और अर्चना करने लगी तथा उसके निकट आकाश प्रगट हुआ। आकाश का जो 'शर' (अर्थात ऊर्जा) था, वह एकत्रित हुआ और पृथ्वी तत्व बन गया।

आपो वा अर्कस्तद्यदपां शर आसीत्तत् समहन्यत।

सा पृथिव्य भवत्त (अ० १, ब्रा० २, कं० १)

निश्चय ही आप अर्थात् आकाश (ब्रह्माण्ड) है। आकाश की जो शर अर्थात् ऊर्जा थी, वह सब इकट्ठी हुई। वह पृथ्वी बन गई।

यह एक महान् विस्मयकारी उक्ति है। पूर्णतया विज्ञान - सम्मत। विज्ञान का रथ आज जिस लक्ष्य पर पहुँचा है, ऋषि याज्ञवल्क्य ने वही तथ्य सृष्टि रचना के संदर्भ में सहास्राब्दियों पूर्व कह दिया। उनकी अनोखी प्रज्ञा को शत - शत नमन।

यह तत्व मात्र वायु - पिण्ड था तथा असीम वेग से घूमने लगा। अपनी गति के कारण यह जलने लगा। इस प्रकार मृत्यु ने श्रम किया, उस श्रान्त और तप्त मृत्यु के श्रम के कारण जो उत्पन्न हुआ, वह पदार्थ तेजोरस कहा गया।

सहसा वह पदार्थ अर्थात् तेजोरस तीन भागों में बँट गया—आदित्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वी, और यह आकाश में प्रतिष्ठित हो गया।

पृथ्वी पर यह प्रज्वलित पिण्ड शीतल हुआ। पृथ्वी के शीतल होते ही वायुमण्डल का निर्माण हुआ। इसके साथ दो परिवर्तन हुए। जब तक वायुमण्डल न था, तब तक संसार शब्दहीन, निःशब्द था। वायु-मण्डल के निर्माण के साथ ही संसार शब्दमय हो गया। यह भौतिक

विज्ञान का एक साधारण प्रयोग है, जो आज भी प्रत्येक प्रयोगशाला में किया जाता है कि यदि किसी स्थान विशेष को वायुहीन कर दिया जाये, तो वह निःशब्द हो जाता है। इस प्रकार वायुमण्डल के निर्माण के साथ जगत में 'शब्द' का प्रादुर्भाव हुआ।

एक और परिवर्तन हुआ कि संवत्सर का निर्माण हुआ। जब तक पृथ्वी जल रही थी, तब तक सूर्य के चारों ओर तथा अपनी धुरी पर घूमते हुए भी, कहीं भी रात नहीं थी। पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही गोलार्द्ध प्रकाशमय थे। इस प्रकार रात नहीं थी, दिन भी नहीं था। केवल एक प्रकाश-पुञ्ज पृथ्वी, दूसरे प्रकाश - पुञ्ज सूर्य के चारों ओर घूम रहा था। दिन और रात न होने के कारण, काल - गणना का कोई मापदण्ड नहीं था।

पृथ्वी के शीतल होते ही, अपनी धुरी पर घूमती हुई पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सम्मुख आता है—वहाँ दिन होता है और जो सूर्य से ओझल होता है, वहाँ रात होती है। इस प्रकार रात और दिन का निर्माण हुआ। यह रात - दिन काल - गणना का आधार हुआ तथा संवत्सर का निर्माण हुआ।

यही शब्दमय वायुमण्डल आगे चल कर पशुओं, प्रजाओं का जीवन - आधार हुआ तथा ऋक, साम, यजु छन्द और यज्ञ का मूल कारण भूत हुआ।

पशुओं और प्रजाओं के निर्माण के उपरान्त, यश और वीर्य का प्रादुर्भाव हुआ। यश और वीर्य मनुष्य का लक्षण है। इस लक्षण के माध्यम से ऋषि, मनुष्य का उद्भव इस पृथ्वी पर दर्शाते हैं।

इस प्रकार यह पृथ्वी रूपी अश्व गतिशील हुआ और मेध्य अर्थात् पवित्र हुआ।

इस पृथ्वी पर जीव-सृष्टि है तथा इसके सब कार्य संवत्सरानुसार ही होते हैं। पौधों पर फूलों का आना, वृक्षों का फलों से लदना, सब संवत्सरानुसार ही होता है, इस कारण यह संवत्सर विश्व की आत्मा है।

जीव-सृष्टि और संवत्सर इसी पृथ्वी की विशेषता है। अन्य लोकों की आत्मा मात्र अग्नि है। अन्य लोकों में न जल है, न वायु, न पृथ्वी, मात्र अग्नि-पिण्ड ही आकाश में विचर रहे हैं।

इन सबका निर्माण मृत्यु द्वारा ही हुआ, अतएव मृत्यु ही एक देवता है। जो इस प्रकार मृत्यु को जानता है, वही मृत्यु को जीतता है—इस लोक में।

'मृत्युरस्याऽऽत्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति'

मृत्यु इसका आत्मा होता है, उसका देवता नाम एक होता है।



द्वितीय ब्राह्मण

सृष्टि का तब आदि था,
एक तत्व मृत्यु था,
एक तत्व भूख था—
किन्तु यह कुछ भी नहीं था।
मृत्यु रूपा भूख है,
भूख ही तो मृत्यु है,
यह याज्ञवल्क्य ने कहा—
और सबने है सुना।

(आरम्भ में कुछ भी नहीं था,
जो 'कुछ नहीं था' 'मृत्यु' था।
मृत्यु ही तो एक ऋत था,
वह निरन्तर कार्यरत था।
कुछ नहीं की असीम क्षमता,
निरन्तर सृजन विघटन की क्रिया।
यह थी अनोखी एक विधा,
मानी गई मृत्यु की क्षुधा।
मृत्यु जो कुछ भी नहीं थी,
क्षुधा उसी की अभिव्यक्ति थी।
अव्यक्त मृत्यु व्यक्त हो गई,
सृष्टि रचना हेतु उद्यत हो गई।)

मृत्यु भूख एक हुई,
भूख मृत्यु को लगी।
मृत्यु तप करने लगी,
मृत्यु अर्चना करने लगी।
आकाश उसको मिल गया,
मानो कि सब कुछ मिल गया।

आकाश की जो ऊर्जा,
'शर' जिसे ऋषि ने कहा।
वह समाहित हो गई,
वह तत्व पृथ्वी बन गई।
मृत्यु, भूख, तप का समन्वय,
विज्ञान, काव्य, धर्म का समन्वय।

सृष्टि रचना का गूढ़तम रहस्य,
धन्य ऋषि याज्ञवल्क्य धन्य।

जो कहा था तुमने कभी,
विज्ञान सिद्ध कर रहा अभी।

वह तत्व वेगवान था,
धधकता जाज्वल्यमान था।
इसे तेजोरस है कहा,
और वह बटने लगा।

वह तीन भागों में बटा,
तीसरा ही आदित्य था।
तीसरा ही अन्तरिक्ष था,
और तीसरा ही अग्नि था।
कौन पहला - दूसरा,
यह नहीं हमको पता।
एक क्षण में यह सब घटा,
यह कार्य था विस्फोट का।

और यह सृष्टि घूमती रही,
दिशायें निर्धारित हुईं,
बात इतनी हो गई—
पर मृत्यु भूखी ही रही।

मात्र धधकता आदित्य था,
अन्तरिक्ष भी तप रहा था।
और जल रही थी धरा—
न रात थी न दिवस था।

यह तो सब, कुछ भी नहीं,
फिर मृत्यु श्रम करने लगी।

जल रहा पूर्वी गोलार्द्ध था,
धधकता पश्चिमी गोलार्द्ध था।
सब ओर असहनीय प्रकाश था,
भीषण अग्नि का त्रास था।

फिर वायुमण्डल को रचा,
शब्द फिर मन को मिला।
शब्दमय जग हो गया,
शीतल हो गई यह धरा।
दिन-रात का क्रम बन गया,
इस प्रकार संवत्सर बना।

इसके पूर्व संवत्सर न था,
मौन थी धरा शब्द भी न था।
रात - दिन न थे, संवत् न था,
काल-गणना का आधार न था।

पर मृत्यु सोचने लगी—
यह तो सब कुछ भी नहीं।

वाणी में वेदों को रचा,
पशुओं, प्रजाओं को रचा।
मृत्यु ने खाया न इनको,
मृत्यु ने मिटाया न इनको।

पृथ्वी फूलने-फलने लगी,
पर मौत भूखी ही रही।
प्रतिज्ञा तभी जीवन ने करी,
तूने मुझे मिटाया नहीं।
मैं तुझे भूखा रखूँगा नहीं,
अब अतिथि तू मेरी हुई।

मृत्यु पुनः यज्ञ हेतु तत्पर हुई,
श्रम-तप द्वारा यश-वीर्य की रचना हुई।
यश-वीर्य ही सर्वत्र विस्तृत हो गया,
भूलोक में यश-वीर्य ही प्राण है कहा गया।
यश - वीर्य द्वारा सृष्टि शोभामय हुई,
यश-वीर्य से ही मृत्यु मोहित हो गई।
यश - वीर्य ही प्रतीक मनुष्यता का,
यही आधार विश्व की अमरता का।

फिर कामना की मृत्यु ने

यह लोक ज्ञान-लोक हो,
यह लोक यज्ञ-लोक हो।
यह अश्व का अश्वत्व है,
यह अश्वमेध का रहस्य है।

गति संसार की रुकती नहीं,
प्रति वर्ष मृत्यु इसको ग्रस रही।
दिन-रात, ऋतु, मास, पर्व—
विलीन शून्य में हो रहे सर्व।

संसार जो कि तप रहा है,
अश्वमेध ही कहा गया है।
जिस क्रम से यह चल रहा है,
(वह) वर्ष इसकी आत्मा माना गया है।

ब्रह्माण्ड सारा जो सदा से तप रहा,
यह भी अश्वमेध कहा गया।
इस विशाल ब्रह्माण्ड की अग्नि ही है आत्मा,
अन्य लोकों में नहीं कुछ और है पाया गया।

पर एक ही है देवता, मृत्यु जिसको है कहा।
जो मृत्यु को है जानता, वह मृत्यु को है जीतता।
जो यज्ञ रूप हो जाता यहाँ, वह अमर ही माना गया।
है मृत्यु जिसकी आत्मा, वही देवता गाया गया।

प्रथम अध्याय : तृतीय ब्राह्मण

यद्यपि दूसरे ब्राह्मण में मनुष्य को यश-वीर्य-सम्पन्न सृष्टि की सर्व-श्रेष्ठ कृति कहा गया है, किन्तु एक वास्तविकता है कि मानव - सृष्टि दो भागों में विभाजित है—देव और असुर। असुर सदा ही देवों को उत्पीड़ित करते रहते हैं।

आसुरी त्रास से मुक्त होने के लिए देव सदैव प्रयत्न करते हैं। देव इस हेतु भिन्न - भिन्न प्रकार के विविध आयोजन करते हैं—कभी वेद-गान द्वारा, यज्ञ द्वारा, श्रवण द्वारा, सत्संग द्वारा—समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया जाता है। असुर गण अपनी धूर्तता द्वारा सभी आयोजन विफल कर देते हैं। सब प्रकार के आयोजनों का बाहरी स्वरूप तो प्रत्यक्ष दिखता है, किन्तु उसका समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। असुर गण उत्तरोत्तर प्रबल होते जाते हैं।

अन्त में, देव गण वेद-गान हेतु प्राणोत्सर्ग का भाव जाग्रत करते हैं—असुर पराजित होते हैं और देवगण विजयी होते हैं। यह क्रान्ति का प्रथम चरण है। देव, असुर और उद्‌गीथ द्वारा इसका अत्यन्त सरल वर्णन किया गया है।

दूसरे चरण में प्राण की असीम शक्ति का वर्णन किया गया है। यह जाति के सांस्कृतिक पुनरुत्थान का काल होता है।

तीसरा चरण समाज के विघटन का काल होता है, जब इंद्रियाँ अर्थात् समाज के विभिन्न अंग पुकारने लगते हैं कि हमें क्या मिला और समाज विघटित होने लगता है। ऐसे में कोई प्राणवान व्यक्ति ही जागरण का गीत फिर गाने लगता है और समाज को उठाता है। इस समस्त घटना-क्रम में सदैव हमारी प्रार्थना ही हमारा आधार रहती है।

'असतो मा सद्‌गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।

□ □ □

तृतीय ब्राह्मण

उपनिषद् का यह कथा-प्रसंग,
सनातन इतिहास का है अंग।
अमरता का यह मंत्र है,
जाति-जीवन का यह तंत्र है।

प्रजापति ने जो किया सृष्टि का विस्तार,
दैवी आसुरी में बट गई स्वभावानुसार।

देव थे बलहीन और निर्धन,
असुर थे बलवान तथा सम्पन्न।
विचार करने लगे देवगण--
कैसे पराजित हों असुर गण ?

सर्वसम्मति से किया गया यह विचार,
वेद - गान द्वारा हो धर्म का प्रचार।
जाति में व्याप्त हों सद्विचार,
मर्यादित हों सभी लोक-व्यवहार।

वाग्देवी माता सरस्वती ! वर दे,
वेद-भाव हमारे जीवन में भर दे।
शुभ पवित्र भाव मन में उठें—
यज्ञ भाव का उद्घोष कर दे।
सर्वत्र व्याप्त हो जागरण का शंखनाद,
जाग्रति की किरण से ही हो प्रभात।

वाणी ने वाणी के भोग देवों को दिये,
मंगलमय भाव अपने लिये रख लिये।
इस सन्धि में ही घात असुरों ने किया,
यह शुभ प्रयास विफल कर दिया।

उच्च स्वर से वेद - पाठ होता रहा ।
समाज पूर्ववत प्रगाढ़ निद्रा में सोता रहा ।
दैवी योजना विफल हो गई,
आसुरी धूर्तता सफल हो गई ।
सीधी बात रहस्य हो गई,
वाणी सर्वत्र पापमय हो गई ।

धर्माचार्य स्वार्थ वशीभूत हो गये,
विद्वान कुतर्क की प्रतिमूर्ति हो गये ।
जागरण के गीत सब मन्द हो गये,
छन्द अश्लील अर्थयुक्त हो गये ।

वेद - गान जब हुआ निष्प्रयोजन,
किया देवगण ने यज्ञ का आयोजन ।
यज्ञ-वह्नि जब प्रज्वलित होगी,
यज्ञ-वायु सर्वत्र व्याप्त होगी ।
यह अटूट प्रेरणा का स्रोत होगी,
संसार में यज्ञ-धर्म की प्रतिष्ठा होगी ।

प्राण ने यज्ञ के भोग देवों को दिये,
मंगलमय भाव सब निज में ही रख लिये ।
इस सन्धि में भी घात असुरों ने किया,
यह शुभ प्रयास भी विफल कर दिया ।

दैवी योजना फिर विफल हो गई,
आसुरी धूर्तता फिर सफल हो गई ।
घ्राण-देवता को पापमय कर दिया,
यज्ञ का आयोजन विफल हो गया ।

यज्ञशाला से धुआँ उठता रहा,
किन्तु समाज भोगवादी ही रहा ।
यज्ञ क्रतु स्वधा सभी व्यर्थ हो गये,
वेदों के मंत्र मात्र शब्द रह गये ।

फिर चक्षु की उपासना करी गई,
यथार्थवादी समाज की रचना हुई।
चक्षु ने उद्गीथ के भोग देवों को दिये,
दिव्य भाव सब चक्षु में ही रह गये।

यथार्थ के प्रत्यक्ष गुण गौण हो गये,
सब दोष ही दोष देखने लगे।
दैवी योजना विफल हो गई,
सृष्टि पापपूर्ण ही दिखने लगी।

चार्वाक ऋषियों का यथार्थवाद,
अन्त में हो गया निकृष्ट भोगवाद।

फिर देवों द्वारा श्रोत्र की उपासना करी गई—

सुनें सब वेद की वाणी,
सुखी हों संसार के प्राणी।
श्रोत्र ने उद्गीथ के भोग देवों को दिये,
उद्गीथ के भाव कान में ही रह गये।

श्रवण शक्ति पाप लिप्त हो गई,
झूठी बातें ही सिद्धान्त हो गईं।
अश्लील गीत ही संगीत हो गये,
असुर इस बार भी विजयी हो गये।

फिर देवों द्वारा मन की उपासना करी गई—

मन हमारा शुभ संकल्पमय हो,
समस्त विश्व उद्गीथमय हो।

मन के भोग देवों को मिले,
शुभ संकल्प मन में ही रह गये।

इस सन्धि में घात असुरों ने किया,
पाप द्वारा वेध फिर मन को दिया।

उद्गीथ की आराधना फिर प्राण से हुई,
उद्गीथ हेतु प्राण होम की बात करी गई।
आघात असुरों ने प्राण पर किया,
यह उद्योग पूर्णतया विफल हो गया।

विजयी देवगण हुए,
पराजित असुर हो गए।

बलिदान के इस तत्व को जो जानता,
वही शाश्वत धर्म तत्व को पहचानता।

●

अब देव यह चिन्तन करने लगे,
प्राण के विषय में विचारने लगे।

यह कोई इन्द्रिय विषय नहीं,
इन्द्रियों को रस देता है यही।
आंगिरस कहलाता है यही,
मुख में वास करता है यही।
"अयास्य" कहलाता है तभी,
जो अग्नि है स्वयं ही।

मृत्यु इससे दूर है,
इस हेतु दूर कहते हैं इसे।

इन्द्रियों के पाप प्राण द्वारा हरे गए,
और दिशाओं के अन्त में फेंके गए।
अतः मध्य में ज्ञान है, विवेक है,
दिशान्त में पाप और अविवेक है।

नाश हुआ असुर जन का,
उद्धार इन्द्रियों का हुआ।
इन्द्रियाँ जो कि मर गईं थीं,
प्राण द्वारा जीवित करी गईं।

वाणी पापमय हो मर गई थी,
प्रेरणा की अग्नि दी उसको गई।
इस भाँति वाणी जीवित करी गई,
कीर्तिमयी हुई तथा मृत्यु से परे हुई।

घ्राग देवता मर चुका था,
वायु द्वारा वह जिलाया गया।
वायु रूप फिर वह हो गया,
सर्वत्रगामी वह भी हो गया।

चक्षु की ज्योति जो बुझ रही थी,
आदित्य द्वारा उसे जिलाया गया।
आदित्य रूप फिर चक्षु हो गया,
पाप-मुक्त हो इस भाँति अमर होगया।
कान जो सुनते नहीं थे,
और जो जड़ हो गए थे।
उन्हें जिलाने को दिशाएँ आ गईं,
कर्णरूप हो दिशाएँ अमर हो गईं।
मन जो कि मर चुका था,
चन्द्रमा द्वारा जिलाया गया।
चन्द्र रूप मन फिर हो गया,
पाप-मुक्त हो शशि अमर हुआ।

शब्द जिसके प्रेरणामय हैं,
(श्वास) घ्राण जिसका वायुमय है।
ज्ञान आलोकित सूर्य सम है,
आनन्दमय मन चन्द्र सम है।
कर्ण जिसके ज्ञानमय हैं,
वह पाप मुक्त होता अमर है।

●

फिर प्राण में भोज्यान्न को गाया,
अन्न प्राण हो प्राण में समाया।
सब इन्द्रियाँ दुखी हो पुकारने लगीं,
हमारा भाग कैसे मिलेगा हमें कभी।
अन्न जो मिला सीमित है यहाँ,
हमारा भाग कैसे हमको मिलेगा।

प्रवेश सब मुझ में करो,
प्राणमय हो, कर्ममय हो।
सब इन्द्रियाँ प्राण में प्रतिष्ठित हुईं,
प्राण के ही अन्न से वे तृप्त हुईं।

प्राणवान व्यक्ति ही जाति को है बनाता,
वही जागरण के गीत है बारम्बार गाता।
अन्धकार में वही मार्ग है दिखाता,
वही दिशाओं में जाति-यश को बढ़ाता।

करे अवहेलना उसकी,
उसका नाश निश्चित।
अनुकूल जो चले उसके,
उसका उत्थान निश्चित।

प्राण ही आंगिरस है,
अंग प्रत्यंग का रस है।
प्राण ही बृहस्पति है,
वृहती वाग्देवी का पति है।
यह प्राण ही ब्रह्म है,
प्राण ही साम है।
समभाव से सर्वत्र व्याप्त है,
यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है।
विराट् से भी विराट् है,
प्राण ही उद्गीथ है।
जो प्राणहीन उद्गीथ गाये,
उसे वह प्राण नीचे गिराये।
प्राणहीन उद्गीथ मात्र प्रलाप,
केवल सुर, ताल, और आलाप।

जो सूक्ष्म और विराट् माना गया,
साम और बृहस्पति जो कहा गया।
जो जान गया प्राण के प्रभाव को,
वाणी प्राप्त करती प्राण भाव को।

जैसे पुरुष देखना चाहता निज रूप को,
वैसे ही जानना चाहता प्राण के रूप को।

जो जानता सम भाव से प्राण के रूप को,
वह विज्ञानी जान लेता है निज स्वरूप को।

अन्त में आओ प्रार्थना करो,
असत से हमें सत की ओर ले चलो।
अन्धकार से ज्योति की ओर ले चलो,
मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो।

इसके अतिरिक्त जो भी प्रार्थना हो,
तथा जो भी अन्य साधना हो—
वह लौकिक स्वार्थ हेतु ही हो,
अलोक्यता का न उसमें कोई हेतु हो।



प्रथम अध्याय : चतुर्थ ब्राह्मण

यह ब्राह्मण मानवीय सभ्यता के विकास की कहानी है। एकाकी जीव दो भागों में विभक्त हुआ—पुरुष और स्त्री तथा उसी से ही समस्त सृष्टि उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती गई। इसके उपरान्त अग्नि का आविष्कार हुआ, फिर कृषि का विकास हुआ, फिर वर्ण - व्यवस्था निर्धारित हुई और निष्कर्ष स्वरूप सत्य को धर्म का आधार माना गया।

इस सारी प्रक्रिया में एक ही बात प्रतिपादित की गई है कि समस्त मानवीय सभ्यता एक आत्मा का ही विस्तार है। अतएव मानव और मानवीय सभ्यता के अध्ययन हेतु पाँच महायज्ञों का विधान किया गया है।

1. देव - यज्ञ —समाज के आदर्शों से जो मूर्तरूप महापुरुष हुए हैं, उनके प्रति समर्पण - भाव।
2. ऋषि - यज्ञ —सत्य वक्ता महापुरुषों का समर्थन
3. नर - यज्ञ —अतिथि का आदर - सत्कार
4. पितृ - यज्ञ —परिवार का भरण - पोषण
5. भूत - यज्ञ —आश्रित पशु - पक्षियों को अन्नदान

□□□

चतुर्थ ब्राह्मण

जीव सृष्टि में आदि आत्मा ही था,
सम भाव से वह सर्वत्र व्याप्त था।
यह आत्मा पुरुष रूप था,
वह सर्व पापों से विमुक्त था।

अवलोका उसने अपने चारों ओर,
नहीं दिखा अपने अतिरिक्त कोई और।
उदित हुआ है आत्मा में अहं भाव,
अहं ही हुआ आत्मा का नाम।

आत्मा से श्रेष्ठ जो निज को है मानता,
आत्मा द्वारा ही उसका है नाश होता।

गर्जन करती समुद्र में लहरें अपरम्पार,
धरा पर कम्पन होता बारम्बार।
फटते ज्वालामुखी अनेक प्रकार,
असीम था मरु भूमि विस्तार।
टूटते बिखरते हिम - खण्ड,
वायु का वेग असीम प्रचण्ड।
विचरता था वह अकेला सब ओर,
था प्रकृति का रूप भयंकर घोर।
उफनती नदियाँ देतीं त्रास,
कौंधती विद्युत असह्य प्रकाश।
टूटती निश दिन करती बज्राघात,
छेदती सदा धरा का कोमल गात।

भय का हुआ उसमें संचार,
उठा फिर एक आर्य विचार।
किससे डरूँ, किससे मानूँ हार,
सम्पूर्ण प्रकृति पर मेरा अधिकार।
भय है मात्र तुच्छ अज्ञान,
हुआ वह निर्भय और महान्।

विचरता था एकाकी जीव,
शुद्ध आत्मा का एक प्रतीक।
वह था निर्द्वन्द और भयहीन,
किन्तु वह था आनन्द विहीन।

लगा वह बटने बारम्बार,
हुआ फिर लिंग - भेद निर्माण।
आनन्दमय हुआ तभी संसार,
सुनिश्चित याज्ञवल्क्य विचार।

धरा पर विचरते बारम्बार,
उदित जो हुए भव्य विचार।
हुए समाहित एकाकार,
बने वह नारी रूप साकार।

मनुज और पशु जाति अपरम्पार,
विचरने लगे भूमि पर भली प्रकार।
केवल एक जीवात्मा का विस्तार,
आत्मा ही सर्व सृष्टि आधार।

तथ्य जो करता यह स्वीकार,
ज्ञाता वही शुद्ध निर्विकार।

●

मुख और करतल लोम विहीन,
निर्मल शुद्ध प्रकृति के जो यह प्रतीक।
किया अमित श्रम इनने बारम्बार,
शुद्ध अग्नि का हुआ आविष्कार।

खोजे गये पोषक आर्द्र पदार्थ,
कृषि की कल्पना हुई यथार्थ।

अग्नि है जीवन का आधार,
उठा फिर एक अदम्य विचार।

'न इस देवता को, न उस देवता को,
पूजेंगे हम तो इसी देवता को।'

सभ्यता का पहला आह्लाद,
उन्मुक्त मानव का हर्ष निनाद।
केवल अन्न और अन्नाद,
अन्न है सोम, अग्नि अन्नाद।

अन्न और अन्न का खानेहार,
मात्र बस इतना है संसार।

मनुज होकर भी केवल मर्त्य,
खोजता फिरता था वह सत्य।

हुआ फिर पशुवृत्ति का ह्रास,
मानवता का सहज विकास।

रची फिर देव सृष्टि अपार,
निश्चित हुए नीति आधार।
इन्हीं में है अमृत का सार,
यही है अति सृष्टि विस्तार।
निश्चित हुए जीवन आदर्श,
हुए वे देवरूप सदृश्य।

नहीं था आदि में नाम रूप विस्तार,
अव्याकृत ही था यह सारा संसार।
नाम से ही जाना गया आकार,
नाम से ही विश्व हुआ साकार।

जैसे असि का कोष में स्थान,
आत्मा वैसे ही देह में विद्यमान।
आत्महीन सब जीव निस्सार,
घ्राण वायु मन का यह आधार।

कर्मानुसार यह आत्मा के स्वरूप,
आत्मा से पृथक न इनका कोई रूप।

न हैं यह उपासना के आधार,
आत्मा में होते यह एकाकार।
कर्म मन प्राण से होती आत्मा की खोज,
ऐसे ही जीव इनसे पाता शक्ति, यश, ओज।

पुत्र, धन तथा और कुछ अन्य,
नहीं है यह आत्मा के समतुल्य।
पुत्र, धन-धान्य तथा संसार,
आत्म ज्ञान बिना निस्सार।

आत्म ज्ञान देने में कोई बिरला ही समर्थ,
अन्य करते फिरते प्रलाप मात्र ही व्यर्थ।
आत्मा को ही मान कर आधार,
उपासना करो निश्चित निर्विकार।

उपासना से रमे आत्मा में ही चित्त,
न हो उपासना लौकिक भोग निमित्त।

ब्रह्म विद्या से होता मोक्ष है प्राप्त,
किन्तु ब्रह्म ज्ञानी रहता सदा ही अप्राप्त।

आदि में ब्रह्म एक निर्विकार,
उसको हुआ आत्मा का भान।
विश्व का हुआ तभी निर्माण,
जगे कुछ देव प्राप्त कर ज्ञान।

हुए कुछ ऋषि - मनीषी आप्त,
उन्हें भी हुआ ज्ञान यह प्राप्त।

किया ऋषि वामदेव ने उद्घोष,
'मैं ही मनु, मैं ही सूर्य अमित ओज।
मैं ही ब्रह्म जो जानता मानव आज,
न उसका नाश होता किसी काल।

जो जानता निज को ब्रह्म से भिन्न,
नहीं कुछ जानता वह अनभिज्ञ ।
मनुष्य की सेवा करता पशु समाज,
वैसे ही देव पूजारत अज्ञ समाज ।

यदि मनुष्य को प्राप्त हो यह ज्ञान,
नष्ट हो जाय देव पाखण्ड विधान ।

आदि में था केवल ब्राह्मण वर्ण,
पाखण्ड वश हुआ दुर्दशाग्रस्त ।
मनीषियों ने फिर किया विचार,
रची फिर क्षत्रिय जाति सुविचार ।

इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, ईशान,
पर्जन्य यम मृत्यु देव - क्षत्र जान ।
इन्हीं के गुणों को मान आधार,
छात्र धर्म का किया गया विस्तार ।

समाज रक्षा हित क्षत्रिय ही समर्थ,
नहीं है इसके तुल्य अन्य कोई वर्ण ।
राजसूय में क्षत्रिय लेता उच्च स्थान,
यज्ञ की पूर्णाहुति के उपरान्त ।
क्षत्रिय त्याग कर निज स्थान,
बैठता अन्यों के ही समान ।
घटाता नहीं ब्राह्मण का सम्मान,
ब्राह्मण का अपमान अतिशय पाप महान् ।

समाज फिर भी रहा विपन्न,
संचय विहीन तथा निर्धन ।
दख कर देव गणों के मध्य,
बसु मरुत विश्वेदेव रुद्र सूर्य ।
सृष्टि पर निर्मित हुए फिर वैश्य,
अर्थ व्यवस्था का हुआ समन्वय ।

समाज फिर भी न हुआ समृद्ध,
निर्मित हुए समाज में शूद्र।
यह धरती के ही पूत,
पोषण की जाग्रत मूर्ति।
माँ वसुन्धरा के ही यह रूप,
समाज के प्रत्यक्ष आधारभूत।

फिर भी होता रहा जाति का ह्रास,
विचारकों, चिन्तकों को देता त्रास।
समाज था उच्छृंखल स्वार्थ विलीन,
जीवन था आदर्श, प्रेरणा हीन।

सत्य है धर्म, धर्म है सत्य,
माना गया यह शाश्वत सत्य।
यही जब किया गया स्वीकार,
खुले फिर समुत्कर्ष के द्वार।
विभक्त हुआ यह ब्रह्म कर्मानुसार,
यह सब एक ब्रह्म का विस्तार।

ब्राह्मण का ब्रह्मत्व,
क्षत्रिय का क्षत्रियत्व,
वैश्यों का वैश्यत्व,
शूद्रों का शूद्रत्व।

सभी में एक ब्रह्म का आभास,
सभी का लक्ष्य ब्रह्म निर्वाण।

अग्नि द्वारा कर खोज तथा अन्वेषण,
ब्राह्मण वर्ण फिर हुआ कीर्ति संपन्न।
अग्नि और ब्राह्मण का संयोग,
है ज्ञान और विज्ञानी का संयोग।

आत्मा ही सृष्टि का सार,
हो इसके लिए अथक प्रयास।

एक आत्मा ही सर्व जीव आधार,
पंच महायज्ञ कराते साक्षात्कार।

आदर्श मूर्त जो महामनुज,
माने गए जो देव तुल्य।
उनके प्रति समर्पण भाव,
यही है देवयज्ञ अभिराम।

स्पष्ट वक्ता जाति आधार,
जो मान्य ऋषि समुदाय।
उनके प्रति समर्पण भाव,
यही है ब्रह्मयज्ञ आधार।

आदर पूर्वक स्मरण निज पूर्वजों का,
समुचित भरण-पोषण परिजनों का।
निश्चित पितृयज्ञ आधार,
धर्म का एक मूल आधार।

अतिथि की व्यवस्था तथा सत्कार,
साक्षात् नर यज्ञ आधार।

आश्रित पशु-पक्षी को अन्नदान,
यही है निश्चित भूत यज्ञ महान्।

इनसे न हो यज्ञकर्त्ता का नाश,
कराते यह आत्मा का ज्ञान।

फिर हुआ आत्मा का विस्तार,
विस्तृत उसका धन तथा परिवार।
मन ही है आत्मा की आत्मा,
वाणी आत्मा की पत्नी रूपा।

प्राण इस आत्मा की सन्तान,
चक्षु करता आत्मा को धनवान।
श्रोत्र है आत्मा का धन दैवीय,
शरीर इसे करता क्रियाशील।

आत्मा मन वाणी चक्षु श्रोत्र,
यह करते सभी यज्ञ सम्पूर्ण।
इस हेतु कहे गए यह पांक्त,
मनुष्य पशु में एक समान।

मन वाणी तथा चक्षु विहीन,
आत्मा की चर्चा अर्थ विहीन।
आत्माहीन सभी अंग - प्रत्यंग,
नियति के प्रति क्रूरतम यह व्यंग्य।



प्रथम अध्याय : पंचम ब्राह्मण

अन्न मानव - जीवन का आधार है। इस ब्राह्मण में अन्न के माध्यम से उत्कृष्ट जीवन की प्रेरणा दी गई है।

1. एक अन्न पशु - अन्न है। माँ का दूध पशु - अन्न है।

2. पृथ्वी से उत्पन्न अन्न साधारण अन्न है। मनुष्य इसका उत्पादन करता है तथा इसी का भोजन करता है। यह अन्न इस प्रकार से अक्षय है। जो इसको प्रतीक रूप में ग्रहण करता है, वह बल, ऊर्जा और देवत्व प्राप्त करता है।

3. पूर्णिमा और अमावस्या को जो अन्नदान किया जाता है, वह देव अन्न है। अमावस्या की रात्रि के किसी क्षण सृष्टि फिर पुनर्निर्माण में संलग्न होती है, अतः अमावस्या की रात्रि में जीव-हत्या वर्जित है। इस प्रकार मानव - जीवन में अहिंसा का समावेश किया गया।

4. प्राण, वाणी और मन प्रजापति को सर्पित हों। यह तीन प्रजापति के अन्न हैं। प्रजापति संवत्सर को कहा गया है। प्राण, वाणी और मन द्वारा, एकाग्रचित्तता से समय का उपयोग ही, प्रजापति को यह तीन अन्न अर्पित करना है।

5. सन्तान को सुसंस्कृत करने के लिए पिता पुत्र को तीन वर देता है
   1. तू ब्रह्म है 2. तू यज्ञ है 3. तू लोक है।

6. इन्द्रियों को आदेश है कि अति श्रम द्वारा मृत्यु को प्राप्त न हों।

7. व्रत साधना हेतु वायु को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार श्वास - प्रश्वास निरन्तर एक गति से चलते रहते हैं, उसी प्रकार व्रत साधना भी निरन्तर चलती रहनी चाहिए।

□ □ □

पंचम ब्राह्मण

तप और मेधा से उत्पन्न अन्न सात,
एक अन्न साधारण सभी को प्राप्त।
देव गणों को दिए गये दो अन्न,
प्रजापति को अर्पित हैं तीन अन्न।

एक अन्न को कहा गया पशु-अन्न,
जो ग्रहण करता सर्व प्राणी वृन्द।
नित्य खाने पर भी अक्षय है अन्न,
मनुष्य बारम्बार इसे करता उत्पन्न।

प्रतीक रूप से ही जो लेता है अन्न,
प्राप्त करता है बल ऊर्जा देवत्व।

माता का दूध पशु अन्न है,
प्राणी का यह प्रथम अन्न है।

देवों को दिये गए दो अन्न,
एक कहाता हुत, एक प्रहुत।
अमावस्या पूर्णिमा का यजन,
यह भी कहे गए दो देव-अन्न।

सर्व यज्ञ हो कामना विहीन,
देव-अन्न न हो जिससे क्षीण।

प्रजापति को अर्पित तीन अन्न,
प्राण, वाणी तथा मन।
न अर्पित हो प्रजापति को प्राण, वाणी, मन,
आधार समाज का टूटता है उसी क्षण।
समाज की शक्ति हो जाती छिन्न-भिन्न,
असीम क्षमता वहन करते प्राण, वाणी, मन।

मन ही नियंत्रक सम्पूर्ण इन्द्रियों का,
अन्यमनस्क की क्षीण होती कर्मण्यता।
मन अन्यत्र काम सुनकर सुनते नहीं,
तथा नेत्र देखते हुए, देखते ही नहीं।

काम संकल्प श्रद्धा तथा अश्रद्धा,
धृति अधृति बुद्धि तथा लज्जा।
सभी भाव उठते हैं जो व्यक्ति में,
समाहित सभी मानसिक शक्ति में।

शब्द ही को है वाणी माना गया,
शब्द आधार निश्चित धारणा का।

प्राण के हैं जो विभिन्न भाग,
माने गए आत्मा के अंग भाग।
इस प्रकार आत्मा मनोमय,
आत्मा वाङ्मय तथा प्राणमय।

वाणी ही पृथ्वी लोक,
मन ही अन्तरिक्ष लोक।
प्राण है द्युलोक,
इस प्रकार यह तीन लोक।

वाणी ही ऋग्वेद है,
मन ही यजुर्वेद है।
प्राण ही सामवेद है,
आत्मा के यह वेद हैं।

वाणी ही देव है,
मन ही पितर है।
प्राण ही मनुष्य है,
मन ही पिता है।
वाणी ही माता है,
प्राण ही प्रजा है।

जो ज्ञात है वह वाणी है,
जो विज्ञात है वह वाणी है।
तत्ववित् का आधार वाणी है,
ज्ञान का आधार वाणी है।

जो जानने योग्य है वह मन है,
मन ही प्रथम जानने योग्य है।
मन ही जिज्ञासा का जन्मदाता,
तत्ववित् का मन ही आश्रयदाता।

जो अविज्ञात है वह प्राण है,
प्राण स्वयं ही अविज्ञात है।
तत्ववित् खोजता अविज्ञात है,
यही ज्ञानी के जीवन का सार है।

जहाँ तक है वाणी का विस्तार,
वहाँ तक पृथ्वी अग्नि का संसार।

जितना मन उतना द्युलोक,
जितना मन उतना ही सूर्य लोक।
मन और वाणी का संयोग,
प्राण की उत्पत्ति का यह योग।

शत्रुहीन प्राण ही है इन्द्र,
यही महान् ऐश्वर्य सम्पन्न।
प्राण का आधार जल,
प्राण की ज्योति चन्द्र।

प्राण वाणी तथा मन,
यह कहे गए अनन्त।

जो मानता इनको अन्तवन्त,
वह जीत लेता मृत्युलोक।
जो मानता इनको अनन्त,
जीत लेता लोक अनन्त।

संवत्सर को प्रजापति भी है कहा,
संवत् द्वारा काल सबका पोषक हुआ।
पन्द्रह रात्रियों की कला अनित्या,
अमावस्या रात्रि की कला नित्या।

रात्रि में सब जीव लय होते सदा,
प्रभात में फिर जन्म लेते हैं सदा
अमावस्या रात्रि में एक पुनीत क्षण,
जीव प्राप्त करते मानो नव जीवन।

इस रात में न मारे किसी जीव को,
चाहे चढ़ानी हो बलि देवता को।

सोलह कला युक्त संवत्सर,
यही प्रजापति यही पुरुष परम।
पन्द्रह कला पुरुष के वित्त धन,
सोलहवीं कला उसका आत्म धन।

यह पन्द्रह कलायें सब हैं नाशवन्त,
आत्मा द्वारा पुरुष होता अनन्त।

मनुष्य लोक, पितृलोक, देवलोक,
पुत्र जीतता मनुष्यलोक।
कर्म जीतता पितृलोक,
विद्या जीतती देवलोक।

वयोवृद्ध पिता शक्ति विहीन,
पुत्र को देता है वर तीन।

तू ब्रह्म, यज्ञ, तथा लोक निर्विकार,
इन तीन वरों को तू कर स्वीकार।

पुत्र ने किये यह वर स्वीकार,
मैं ही ब्रह्म यज्ञ लोक निर्विकार।

जो पठन आपने किया नहीं,
पाठ पूरा मैं करूँगा वही।

मैं ही यज्ञ शाश्वत निरन्तर,
जाति धर्म रक्षा हेतु तत्पर।

तात जो लोक प्राप्त न हो सका,
उन सभी को प्राप्त मैं करूँगा।
साधना जो लौकिक रही अपूर्ण,
उन सबको मैं करूँगा पूर्ण।

ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त मैं करूँगा,
ब्रह्म चिन्ता में सदा नित रहूँगा।

पिता की महान् दिवंगत शक्ति,
पुत्र को देती असीम शक्ति।
जो पुत्र ब्रह्म यज्ञ लोक युक्त,
वाणी होती उसकी सामर्थ्य युक्त।

पृथ्वी, अग्नि होती दैवी वाणी रूप,
कार्य सब होते उसके कहे अनुरूप।

द्युलोक और आदित्य गण,
इस पुरुष को देते दैवी मन।
जल चन्द्र बनाते इसको प्राणमय,
इस प्रकार पुरुष यह आनन्दमय।

इस प्रकार यह मानव देह,
न है विषादमय न शोकमय।
यह सदैव ही आनन्द रूप,
पुरुष होकर भी देव रूप।

प्रजाओं के दुःख और क्लेश,
इससे मुक्त यह पुरुष विशेष।
सदैव ही यह नर पाप मुक्त,
इन्द्रिय सुख-दुख से निर्लिप्त।

प्रजापति ने रचा इन्द्रिय समूह,
इन्द्रियों में आरम्भ हुआ अन्तर्द्वन्द्व ।
वाणी ने कहा 'मैं बोलती ही रहूँगी',
कान ने कहा 'मैं सुनता ही रहूँगा ।'

नेत्र ने कहा— 'मैं देखता ही रहूँगा',
समस्त इन्द्रियों का कार्य आरम्भ हो गया ।
श्रम रूप होकर मृत्यु इन पर छा गई,
सब इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो गई ।

इन्द्रियाँ प्रयत्न करने लगीं,
प्राण को कैसे जानें हम सभी ।
यह चर-अचर कभी मिटता नहीं,
प्राण रूप हो जावें हम सभी ।

इस प्रकार इन्द्रियाँ प्राणमय हो गईं,
प्राण के आधीन इन्द्रियाँ हो गईं ।
कुल-द्रोही का जैसे होता है नाश,
प्राण-द्रोही इन्द्रियाँ प्राप्त करतीं विनाश ।

सब देवतागण, अग्नि सूर्य, चन्द्र,
होता इनका उदय तथा अस्त ।
किन्तु जिसका न होता उदय-अस्त,
वह वायु ही है इन में अधिदैवत् ।

आराधना हो वायु की, प्राण की,
इनका आदेश कि हो प्राण व्रती ।
जैसे नियमित श्वास - प्रश्वास हो,
वैसे ही नियमित व्रत साधना हो ।

प्राण में ही उदय होता सूर्य का,
प्राण में ही अस्त होता सूर्य का ।
इसी प्रकार जो उदित व्रत साधना हो,
जीवन-पर्यन्त उसकी आराधना हो ।

कभी भी न हो निज व्रत से हीन,
व्रत हीन होता पाप ही में लीन ।

प्रथम अध्याय : षष्ठम् ब्राह्मण

नाम, रूप और कर्म द्वारा सब प्राणी एक-दूसरे से पृथक दिखाई देते हैं। इसी आधार पर व्यक्ति अपने को सबसे भिन्न और श्रेष्ठ मानता है। वास्तविकता यह है कि नाम का आधार वाणी, रूप का आधार चक्षु और कर्म का आधार शरीर। वाणी, चक्षु और शरीर का आधार आत्मा, जो समान रूप से सब में व्याप्त है। अतः सब प्राणी समान हैं।

□ □ □

षष्ठम् ब्राह्मण

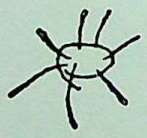
जगत में नाम रूप कर्म महान्,
प्रत्येक प्राणी की यही पहचान।

प्रत्येक नाम का वाणी आधार,
वाणी नाम रूप से सब में व्याप्त।
वाणी का समत्व वाणी का साम,
नाम का ब्रह्म वाणी एकमात्र।

प्रत्येक रूप का चक्षु ही आधार,
चक्षु रूप से सर्व रूप में व्याप्त।
चक्षु का समत्व ही चक्षु का साम,
रूप का ब्रह्म चक्षु एकमात्र।

प्रत्येक कर्म का आत्मा आधार,
सम भाव से सब कर्मों में व्याप्त।
यह समत्व ही आत्मा का साम,
कर्म का ब्रह्म आत्मा एकमात्र।

नाम, रूप, कर्म का अन्तर्भाव,
केवल आत्मा का ही एक भाव।
आत्मा सर्वत्र आनन्दमय निर्विकार,
अमर मात्र अध्यात्ममय प्राण।
सत्य है नाम, सत्य है रूप,
अच्छादित इनसे आत्म स्वरूप।



द्वितीय अध्याय : प्रथम ब्राह्मण

यह ब्राह्मण एक संवाद के रूप में है। वेदवक्ता बालाकि गर्ग और काशी - नरेश महाराज अजातशत्रु का यह संवाद अत्यन्त सरलता से सिद्ध करता है कि प्राण ही ब्रह्म है। यद्यपि महाराज अजातशत्रु आत्मा को ब्रह्म नहीं मानते हैं, किन्तु अन्तिम कण्डिका में आत्मा और प्राण को एक - दूसरे का शब्द वाच्य मान कर ही विषय का समापन करते हैं।

'यही प्राण ब्रह्म है। सब इन्द्रियाँ, सब लोक, सब देव, सब भूत इसी आत्मा अर्थात् प्राण से प्रस्फुटित होते हैं। उसका उपनिषद् नाम सत्य का सत्य है। निश्चय प्राण ही सत्य है। उनके (इन्द्रियों, लोक, भूत, देव) मध्य यही सत्य हैं।'

□ □ □

प्रथम ब्राह्मण

बालाकि गर्ग—अजातशत्रु संवाद

बालाकि गर्ग :

काशी नरेश आशीर्वाद लीजिये,
एक गहन समस्या पर विचार कीजिये।
ब्रह्म क्या है? ब्रह्म क्या है?
यह आज का ज्वलंत प्रश्न है।
इस विषय में अनेक विचार हैं,
उपासना के भी अनेक आधार हैं।
समाज में घोर भ्रम व्याप्त है,
मानव इस हेतु आज दिग्भ्रान्त है।
इस विषय में ही आज संवाद हो,
यह त्रासदायक विवाद समाप्त हो।

अजातशत्रु :

द्विज बालाकि, स्थान ग्रहण कीजिये,
ब्रह्म के ही विषय में विचार कीजिये।
भिन्न-भिन्न विविध मतों पर विचार हो,
न कोई भ्रम हो, न कोई कुविचार हो।
विषयान्तर भी न हो इस संवाद में,
न उलझें हम व्यर्थ वाद-विवाद में।

बालाकि गर्ग :

कतिपय मनीषी यह ज्ञान दे रहे हैं,
सूर्य को ही वे ब्रह्म कह रहे हैं।

अजातशत्रु :

सूर्य श्रेष्ठ है, महान् है,
सब जीवों का आधार है।

सूर्य का उपासक विश्वजयी हो,
अथवा सम्राट चक्रवर्ती हो।
किन्तु यह एक यथार्थ है,
सूर्य मात्र जड़ पदार्थ है।
जड़ में कैसे ब्रह्म प्रतीत हो,
यह संवाद यहीं अतीत हो।

बालाकि गर्ग :

अन्य ऋषि यह कह रहे हैं—
चन्द्र ही ब्रह्म है, चन्द्र ही ब्रह्म है।

अजातशत्रु :

चन्द्र का दर्शन शुभ्र है, धवल है,
आनन्ददायक है, उज्वल है।
उपासक धन-धान्य से सम्पन्न हो,
वैभवशाली हो, परिवार प्रसन्न हो।
किन्तु यह एक यथार्थ है,
चन्द्र मात्र जड़ पदार्थ है।
जड़ में कैसे ब्रह्म प्रतीत हो,
यह संवाद अब यहीं अतीत हो।

बालाकि गर्ग :

विद्युत में जो पुरुष दिव्य है,
मनीषी कहते वही ब्रह्म है।

अजातशत्रु :

इस विषय में न संवाद हो,
न तर्क हो, न व्यर्थ विवाद हो।
तेज रूप विद्युत की जो उपासना हो,
तेजस्वी हो उपासक, कुल यशस्वी हो।
जड़ में कैसे ब्रह्म प्रतीत हो,
यह संवाद यहीं अतीत हो।

बालाकि गर्ग :

आकाश में जो पुरुष दिव्य है,
मनीषी कहते वही ब्रह्म है।

अजातशत्रु :

अमित आकाश का विस्तार,
समस्त सृष्टि का यह आधार।
उपासक धन-धान्य पाता है यहीं,
उसकी प्रजा कालजयी कही गई।
किन्तु यह यथार्थ है,
आकाश जड़ पदार्थ है।
इस विषय में न अब संवाद हो,
न तर्क हो न अनर्गल विवाद हो।

बालाकि गर्ग :

उद्घोष ऋषिगण कर रहे हैं,
वायु को ही ब्रह्म कह रहे हैं।

अजातशत्रु :

तीन गुण हैं वायु के,
यह इन्द्र है, बैकुण्ठ है।
यह कहाती देव-वाहिनी,
उपासक होता इन गुणों का धनी।
किन्तु यह यथार्थ है,
वायु जड़ पदार्थ है।
जड़ में कैसे ब्रह्म प्रतीत हो,
संवाद यह यहीं अतीत हो।

बालाकि गर्ग :

अग्नि में जो पुरुष दिव्य है,
ऋषि कहते यही ब्रह्म है।

अजातशत्रु :

अग्नि है महिमामयी,
सब दुःख सहती है यही।
सहन यह होती नहीं,
उपासक पाता गुण यही।
किन्तु अग्नि जड़ पदार्थ है,
अग्नि नहीं ब्रह्म है, अग्नि नहीं ब्रह्म है।

बालाकि गर्ग :

यह भी एक प्रबल मान्यता है,
जल ब्रह्म है, जल ही ब्रह्म है।

अजातशत्रु :

जल सदैव सर्व प्राणियों के अनुकूल,
उपासक रहता सदा सबके अनुकूल।
न कोई जाता कभी उसके प्रतिकूल,
सभी विश्व के पदार्थ उसके अनुकूल।
किन्तु यह यथार्थ है,
जल जड़ पदार्थ है।
जड़ में कैसे ब्रह्म प्रतीत हो,
संवाद यह यहीं अतीत हो।

बालाकि गर्ग :

दर्पण में जो व्याप्त है सदा,
जो स्वरूप हमारा दर्शाता सदा।
ऋषियों द्वारा वह ब्रह्म है कहा गया,
इस विषय में क्या है मत आपका ?

अजातशत्रु :

देख कर निज रूप का प्रतिबिम्ब,
तेजस्विता ग्रहण करता है पुरुष।
किन्तु दर्पण छायाग्राही मात्र,
दर्पण में नहीं ब्रह्म लेशमात्र।

बालाकि गर्ग :

गति द्वारा उत्पन्न जो शब्द,
ऋषि मानते उसी को ब्रह्म ।

अजातशत्रु :

गति जीवन की क्रिया महान्,
यशस्वी होता पुरुष गतिमान ।
किन्तु गति और वायु का योग,
यही है प्रतिध्वनि का संयोग ।
कहाँ है इसमें ब्रह्म का विचार,
कैसे हो यह उपासना का आधार ?

बालाकि गर्ग :

दिशाओं के जो देव महान्,
मानते ब्रह्म उन्हें मतिमान ।

अजातशत्रु :

दिग्पुरुष हमारे मित्र अभिन्न,
उपासक का होता परिवार संपन्न ।
दिशा-यात्रा करती हमें संपन्न,
संपन्नता मात्र नहीं है ब्रह्म ।

बालाकि गर्ग :

ऋषि यह कह रहे सत्य है,
व्याप्त जो छाया में वह ब्रह्म है ।

अजातशत्रु :

छाया अन्धकार भययुक्त,
पुरुष जो होता इससे मुक्त ।
सुखी रहता जीवन - पर्यन्त,
किन्तु छाया नहीं कदापि ब्रह्म ।
मृत्यु का यह साक्षात् रूप,
गिराता सबको भय के कूप ।

बालाकि गर्ग :

आत्मा में स्थित जो पुरुष दिव्य,
वही ब्रह्म सबका एकमात्र उपास्य ।

अजातशत्रु :

आत्मा की आराधना विशेष,
प्राणी आत्मा में स्थित निःशेष ।
आत्मवान् व्यक्ति होता महान्,
उसकी सन्तान होती आत्मवान् ।
आत्मा में ब्रह्म का आभास मात्र,
नहीं पूर्ण ब्रह्म आत्मा में व्याप्त ।
आत्मा के विषय में यह है यथार्थ,
आत्मा ब्रह्म का स्वभाव मात्र ।

इस विषय में न हो संवाद ।

गर्ग हो गए मौन विचार - मग्न,
अहंकार ज्ञान का हुआ छिन्न-भिन्न ।
महाराज अजातशत्रु ने किया प्रश्न,
'क्या गर्ग, वाद इतना ही मात्र ?'

बालाकि गर्ग :

अब आप मुझे अपना शिष्य मान लीजिये,
इस जटिल प्रश्न का समाधान कीजिये ।

अजातशत्रु :

क्षत्रिय का शिष्य द्विज हो,
यह बात कैसे स्वीकार हो ।
इस रूढ़ि को न मैं मानूँगा,
ब्रह्मज्ञान प्रदान मैं करूँगा ।

महाराज ग्रहण कर गर्ग का हाथ,
तत्क्षण उठ खड़े हुए उनके साथ ।
गर्ग को निज प्रासाद में ले गये,
सोये हुए पुरुष के पास ले गये ।

उस पुरुष को महाराज ने पुकारा,
पर वह पुरुष न हिला, न डुला।
उसके शरीर पर किया नृप ने आघात,
वह सुप्त पुरुष उठ बैठा तत्काल।

अजातशत्रु ने गंभीर प्रश्न किया,
सो रहा था, तब यह कहाँ था ?
जगने पर यह कैसे यहाँ आ गया—
इस घटना पर क्या विचार आपका ?
प्रश्न को गर्ग ने ग्रहण नहीं किया,
इस प्रश्न का उत्तर न उनसे दिया गया।

अजातशत्रु ने सहसा उत्तर दिया,
जब निद्राग्रस्त पुरुष सो रहा था।
विज्ञानमय जो इसका प्राण था,
हृदय कोष में वह विद्यमान था।

सब इन्द्रियों के कार्य उसके आधीन थे,
श्वास - प्रश्वास सब इसके आधीन थे।
वाणी मन चक्षु भी उसके आधीन थे,
कार्य सब अवरुद्ध थे, न वे स्वाधीन थे।

जिस प्रकार मकड़ी करे जाल का निर्माण,
जैसे अग्नि में से हो स्फुलिंग का प्रयाण।
इसी प्रकार प्राण द्वारा नित्य,
इन्द्रियों का निर्माण एक सत्य।
सर्व भूतों का निर्माण भी सत्य,
प्राण द्वारा देवों का निर्माण सत्य।

अतएव प्राण ही एकमात्र सत्य,
यही उपनिषदों का सत्य का सत्य।

सर्व सृष्टि इस में ओतप्रोत,
यही अक्षय आनन्द का स्रोत।

द्वितीय अध्याय : द्वितीय ब्राह्मण

इस ब्राह्मण में यह प्रतिपादित किया गया है कि उपनिषदों का सत्य का सत्य मात्र कल्पना ही नहीं है। यह शिशु रूप में शरीर में वास करता है तथा शरीर की सब इन्द्रियों में व्याप्त देवत्व इसी प्राण की अभिव्यक्ति है।

□ □ □

द्वितीय ब्राह्मण

यह सभी उपनिषदों का सत्य का सत्य,
नहीं है कल्पना, यह एक चिरन्तन सत्य।
शिशु रूप से यह देह में रम रहा,
अन्न जल श्वास से स्थिर हो रहा।

सब देवताओं के जो अनेकों भाव हैं,
इस देहधारी के ही वे स्वभाव हैं।

क्रोधी व्यक्ति के नेत्र की जो ललिमा,
रुद्र के ही रूप की मात्र एक भंगिमा।
मेघ का प्रतिरूप है नेत्र की सजलता,
सूर्य की दर्शिका, नेत्र की कनीनिका।
कृष्ण मण्डल धूम्र यज्ञ का,
शुक्ल मण्डल क्षेत्र इन्द्र का।
झुकें पलक, दिखें रहस्य भूलोक के,
पलक उठें तो पट खुलें द्युलोक के।

मनुज-शीष पात्र है यश से भरा,
सप्त ऋषियों से है यह घिरा।
वाणी का झरना इससे झर रहा,
किन्तु यह घड़ा उलटा है धरा।

वाणी सहित जो ऋषि सात कहे गये,
यश रूप प्राण के ही रूप वे माने गये।

शिर में ही स्थित समस्त ऋषि समाज है,
एक कान गौतम, एक भारद्वाज है।
दोनों नेत्रों को ही विचार लो,
जमदग्नि, विश्वमित्र यहीं निहार लो।

वशिष्ठ और कश्यप हैं नहीं और कहीं,
दोनों नासिका स्थान उनका कही गई।
वाणी में ऋषि अत्रि का वास है,
साधक पाता तत्व का आभास है।

द्वितीय अध्याय : तृतीय ब्राह्मण

ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त दो रूपों की चर्चा करने के उपरान्त, अजातशत्रु इस संसार को ब्रह्म की रंगशाला कहते हैं, तथा कहते हैं कि ब्रह्म अर्थात् प्राण का कितना भी अध्ययन किया जाय, अन्त में स्वीकार करना पड़ता है, कहना पड़ता है—

'मात्र वह ऐसा नहीं,
मात्र वह इतना नहीं।'

यह तथ्य 'नेति-नेति' द्वारा उपनिषद् में ब्रह्म के विषय में कहा गया है। ब्रह्म के विषय में किसी भी निर्णय को अन्तिम रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि हम किसी एक अवतार को अथवा किसी एक देवता को ब्रह्म स्वीकार करते हैं तो निश्चित रूप से हम ब्रह्म-चिन्तन, ब्रह्म-जिज्ञासा की गति अवरुद्ध करते हैं। अतएव जिज्ञासा जिस मंत्र से सदैव जाग्रत रहती है, वह मंत्र 'नेति - नेति' ही है।

□□□

तृतीय ब्राह्मण

अजातशत्रु :

इस असीम ब्रह्म के दो रूप हैं कहे गये,
एक दिखता है नहीं, एक हैं हम देखते ।
एक अमर जो कभी मरता नहीं,
एक वह जो कि मर जाता यहीं ।
एक चलायमान है, दूसरा अचल है,
एक व्यक्त है, दूसरा अव्यक्त है ।

वायु और अन्तरिक्ष अमूर्त हैं कहे गये,
पृथ्वी, जल, तेज, सब मूर्त ही कहे गये ।
इस मूर्त का, अमूर्त का, स्थित और सत् का,
एक भाव ज्वलन है, जो इन्हें तपा रहा ।

वायु और अन्तरिक्ष हैं अमर कहे गये,
यह गतिमान हैं, और यह अव्यक्त हैं ।
गति और अमरत्व ही इनका स्वभाव है,
आकाश की ऊर्जा, यही इनका भाव है ।

ज्ञान अधिदैव का पूर्ण अब हो चुका,
अध्यात्म का ज्ञान है अब जाता कहा ।

शरीर में जो पंच तत्व माने गये,
वायु और आकाश अमूर्त हैं कहे गये ।
शेष तीनों को मूर्त ही हैं जानते,
मूर्त का रस चक्षु ही हैं मानते ।

कुसुम्भी रंग का जो वस्त्र सुन्दर,
पशु रोम का जो रंग धूसर ।
इन्द्रगोप कीट की अतिरंजिता,
श्वेत पुष्प की निर्मल धवलता ।

अग्नि की जो प्रखर तेज ज्वाला,
असीम ब्रह्म की यह रंगशाला।
कौंधती विद्युत की जैसी चपलता,
वैसी ही ब्रह्म ज्ञान की सफलता।

विद्युत के प्रकाश के समान,
प्राप्त होता है ब्रह्म ज्ञान।
ब्रह्म ज्ञान की यही गति है,
ब्रह्मवेत्ता की यही सम्पत्ति है।

किन्तु यह जो सत्य का सत्य है,
विश्व व्यापी परम अक्षर ब्रह्म है।

मात्र वह इतना नहीं,
मात्र वह ऐसा नहीं।
यह मंत्र सतत जिज्ञासा का है,
नेति-नेति द्वारा गाया गया है।

आदेशो नेति-नेति

क्या यह मूर्तिवन्त पदार्थ है?
क्या यह सूर्य सम यथार्थ है?
अथवा परोक्ष में विद्यमान है—
किसी लौकिक नरेश के समान है?

ऐसा नहीं, ऐसा नहीं,
इतना नहीं, इतना नहीं।

प्रत्यक्ष होता है कहीं,
जलपान करता है कहीं।
आहार लेता है कभी,
शयन, करता क्या कभी।

ऐसा नहीं, ऐसा नहीं,
इतना नहीं, इतना नहीं।

क्रोड़ारत होता है कभो,
क्या पंच तत्व से बना यही।
क्या यह इन्द्रियों का विषय है,
अथवा मनन का ही विषय है।

ऐसा नहीं, ऐसा नहीं,
इतना नहीं, इतना नहीं।

क्या शुक्ल, नील अथवा पीत है?
क्या आवागमन आधीन है?
क्या काव्य रचता है कभी—
अथवा शासन करता है कभी?

ऐसा नहीं, ऐसा नहीं,
इतना नहीं, इतना नहीं।

क्या सृष्टि को रचता है कभी?
मातृवत् पोषण करता है कभी।
अथवा संहार करता है यही,
उपमा इसकी क्या मिलती कहीं?

ऐसा नहीं, ऐसा नहीं,
इतना नहीं, इतना नहीं।

बालाकि गर्ग, जान लो,
भलीभाँति विचार लो।
प्रश्न असंख्य पूछ लो,
समाधान ऐसे ही करो।

ऐसा नहीं, ऐसा नहीं,
इतना नहीं, इतना नहीं।

क्या पृथ्वी इससे महान् है?
क्या सूर्य इससे महान् है?
लोक-लोकान्तर महान् हैं—
नक्षत्र समूह,इससे महान् हैं।

ऐसा नहीं, ऐसा नहीं,
इतना नहीं, इतना नहीं।

जौ के दाने से क्या सूक्ष्म है ?
सरसों तन्दुल से क्या सूक्ष्म है ?
क्या कोई इससे वेगवान है—
क्या कोई अधिक विद्वान है ?

इन सभी विषयों में गर्ग, जान लो,
नेति - नेति ही समाधान मान लो।

बालाकि गर्ग :

नेति-नेति ही नहीं ब्रह्म का आदेश है,
'ओ३म्' तथा 'अस्ति' भी ब्रह्म का निर्देश है।
ब्रह्म में विज्ञान है, यह सभी से श्रेष्ठ है,
संचालन भी विश्व का करता यथेष्ट है।

कर्तृत्व, संहार और पालन की क्रिया,
एकान्तिक सुख तथा सनातन अमरता।
क्लेश कर्म विपाक आशय से परे,
कर्तृत्व शक्ति जो प्रदान सबको करे।

उसे जान कर मनुज मुक्त होते हैं यहीं,
इसे जान कर कुछ जानना रहता नहीं।
वह सर्वज्ञ है, शुद्ध है, और दोष मुक्त है,
'ओ३म्', 'अस्ति' से विश्व में स्थित है।

नेति-नेति द्वारा भ्रम एक छा जायगा,
ब्रह्म कुछ भी नहीं, यही माना जायगा।
अतएव अस्ति द्वारा ब्रह्म का आदेश हो,
मेरे मतानुसार ओ३म् से ब्रह्म का निर्देश हो।

अजातशत्रु :

बालाकि, वचन मधुर कहते हो सभी,
पर न मूर्त है, न अमूर्त है यह कभी।

नेति-नेति द्वारा ही ब्रह्म पर विचार हो,
विपरीत अर्थ न हो, इस के लिए प्रचार हो।
भौतिक पदार्थों में ब्रह्म को जानो नहीं,
नेति-नेति द्वारा ही खोजें इसको यहीं।

इन्द्रिय विषय से है परे,
मन चिन्तना से भी परे।
बुद्धिगम्य भी यह है नहीं,
इस हेतु नेति - नेति है यही।

आचार्य उदयन ने जो कहा,
वही मैं कहता हूँ यहाँ।
अनेक भाँति से जो ब्रह्म का विचार है,
उन सभी का जान लो यह सार है।

उपनिषदों का यह 'शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव',
'आदि विद्वान' ऋषि कपिल का भाव।
क्लेश, कर्म, कर्मफल से है यह परे,
ऋषि पातञ्जल ज्ञान यह दे रहे।

शैव धर्मावलम्बी शिव ही इसे मानते,
सब दोषासक्त फिर भी निर्लेप जानते।
शैवों का शिव, वैष्णवों का पुरुषोत्तम,
पौराणिक पितामह, याज्ञिक मानते यज्ञ पुरुष।

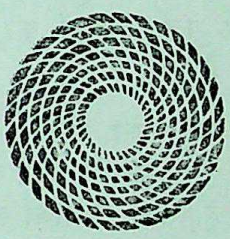
निरावरण है यह दिगम्बरों का,
उदासीन मनीषी मीमांसकों का।
देशित नैयायिक इसे हैं मानते,
चार्वाक लोक व्यवहार सिद्ध जानते।

कारीगरों का ब्रह्म विश्वकर्मा,
इस प्रकार ब्रह्म क्या अनेक धर्मा ?
जिसे जो कोई चाहे उसे ब्रह्म मान ले,
जो भ्रम चाहे कोई कैसे भी पाल ले।

•

उपनिषदों का जो सत्य का सत्य था,
अजातशत्रु ने जो नेति-नेति कहा था।
अव्यक्त अक्षर अनिर्देश्य ही जान लो,
गति रुके न उसकी चिन्तन तथा ध्यान से।
न बाँधो उसे कल्पना या ज्ञान से,
किन्तु उसकी सत्ता को हम मान लें।

नेति-नेति द्वारा अन्वेषण करे ब्रह्म का,
जिज्ञासा से खुले तत्व इस ब्रह्म का।
जो कल था अस्ति आज है नेति,
आज का अस्ति कल होगा नेति।
करते नेति-नेति उद्घोष,
मानव करे ब्रह्म की खोज।



द्वितीय अध्याय : चतुर्थ एवं पंचम ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—मैत्रेयी संवाद

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं—कात्यायनी और मैत्रेयी। चतुर्थ ब्राह्मण में ऋषि ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्मज्ञान दिया। ऋषि के अनुसार—

1. आत्मा सर्वव्यापी है तथा संसार के समस्त ज्ञान का स्रोत है।

2. प्रेत होने पर आत्मा, आत्मा में लीन हो जाती है तथा उसका पृथक नाम और ज्ञान नहीं रहता है।

3. विश्व में अनेकों ग्रह नक्षत्र हैं। ब्रह्माण्ड के सभी ग्रह नक्षत्रों का पृथ्वी के निर्माण में योगदान है। ग्रह नक्षत्रों का पृथ्वी से जो पारस्परिक संबन्ध है—वही आत्मा है, वही ब्रह्म है, वही सर्व है।

4. पृथ्वी पर निर्मित पंच महाभूतों का पृथ्वी से जो संबन्ध है—वही आत्मा, वही ब्रह्म, वही सर्व है।

5. पंच महाभूतों के संयोग से जो यह जीव सृष्टि का निर्माण हुआ, उस जीव सृष्टि और पंच महाभूतों का जो संबन्ध है—वही आत्मा है, वही ब्रह्म है, वही सर्व है।

आत्मा के विषय में यह सरल और स्पष्ट विवेचन है। जिस प्रकार मधु अर्थात् शहद में सभी फूलों के रस का सार होता है, इसी प्रकार यह विद्या मधु विद्या है, सभी विद्याओं का यह सार है।

□ □ □

चतुर्थ एवम् पंचम ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—मैत्रेयी संवाद

जिसे अजातशत्रु ने सत्य का सत्य कहा,
कैसे उसे देख लें तथा ढूँढने जायें कहाँ ?
सोचकर आर्यों ने प्राण को ब्रह्म कहा,
'निर्दोष और सम' उसे ही कहा।

ब्रह्म का यह स्वभाव अध्यात्म है माना गया,
अध्यात्म को ही बार-बार आत्मा कहा गया।
सरल वर्णन हेतु ब्रह्म को आत्मा ही कहा गया,
आत्मा इस प्रकार ब्रह्म का शब्दवाच्य हो गया।

शब्द आत्मा द्वारा ब्रह्म विचार,
यही इस मधुर संवाद का आधार।

●

एक समय ऋषि हुए ध्यानमग्न,
चित्त था शांत, मन अनुद्विग्न।
गृहस्थ का लक्ष्य पूर्ण हो चुका था,
घर सर्वत्र धन-धान्य से भरा था।

फिर भी वे जीवन अधूरा मानते थे,
ऊपर जाने के विषय में विचारते थे।
संबोधित किया दोनों पत्नियों को,
ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी, कात्यायनी को।

इस संसार को त्यागने का विचार है,
मुझ से कुछ लेने का तुम्हें अधिकार है।

कात्यायनी ने धन-संपदा प्राप्त की,
मैत्रेयी ने ब्रह्म की जिज्ञासा करी।
'धन - संपदा न जीवन का लक्ष्य है,
प्राप्त हो अमरत्व यही अभीष्ट है।'

याज्ञवल्क्य :

मैत्रेयी ! अमर मायातीत प्राण है,
उसी का ज्ञान अमरत्व करता प्रदान है ।
ब्रह्म उसे ही विज्ञानी कहते हैं सभी,
उसी की चर्चा करूँगा यहाँ अभी ।

पत्नी का पति से जो व्यवहार,
पति के पत्नी प्रति सद्विचार ।
पिता का पुत्र को आशीर्वाद,
नहीं मात्र निकृष्ट भोगवाद ।

ब्राह्मण का ब्रह्मत्व,
क्षत्रिय का क्षत्रियत्व ।
वित्त नहीं वित्त के निमित्त,
पूजन नहीं मात्र स्तुति निमित्त ।

आत्मा ही इनका आधार,
जगत का नहीं अन्य आधार ।
मात्र आत्मा ही पूर्ण विचार,
सृष्टि का यही एक आधार ।

आत्मा ही श्रवण के योग्य,
आत्मा ही अवलोकन योग्य ।
आत्मा ही मनन के योग्य,
आत्मा ही ध्यान के योग्य ।

यह याज्ञवल्क्य का सूक्ष्म विचार,
मैत्रेयी, इस पर करो आज विचार ।

ब्राह्मण जो हो आत्म-भाव हीन,
शिखा सूत्रधारी कर्मकाण्ड में लीन ।
क्षत्रिय जो न जाने आत्मज्ञान का सार,
व्यर्थ ही ढोता अस्त्र - शस्त्र का भार ।

व्यर्थ है लोक ज्ञान अभिमान,
व्यर्थ है देव शक्ति आह्वान।
सब लोक-संग्रह के अभियान,
निराधार बिना आत्म ज्ञान।

ब्राह्मण का धर्म, क्षत्रिय का कर्म,
सर्वज्ञान सिद्धि तथा लौकिक धर्म।
इन सबका एक ही है मर्म,
सर्वत्र व्याप्त तत्व जो आत्म।

दुन्दुभि का जो गूँजता नाद,
वादक ही पाता आह्लाद।
शंख की ध्वनि का तुमुल उद्घोष,
ज्ञाता को ही होता उसका बोध।

उठती वीणा की झंकार,
संगीत का मधुर संसार।
स्वर हैं असीम अपार,
वाद्ययंत्र अनेक प्रकार।

वाद्य और वादक का संयोग,
यही स्वर-लहरी का योग।
अग्नि से उठतीं ज्वाला अनेक,
आत्मा से ही उत्पन्न सर्व विवेक।

यह जो ऋचाओं का ज्ञान,
यजु मंत्रों का जो ज्ञान,
तथा सामवेद का गान,
अथर्व मंत्र माधुर्य प्रधान।

श्लोक, उपनिषद्, सूत्र, व्याख्यान,
सभी विद्यायें तथा पुराण।
हमारा गौरवमय इतिहास,
मात्र आत्मा का निःश्वास।

सर्व जल का मात्र समुद्र ही आश्रय,
त्वचा ही स्पर्श का आश्रय।
जीभ ही रसों का आश्रय,
नाक ही गन्ध का आश्रय।

रूप सब चक्षु के आधीन,
शब्द होते कर्ण में लीन।
कर प्राप्त करते कर्म का श्रेय,
चरण ही पाते निज गन्तव्य।

हृदय ग्रहण करता विद्या का सार,
वाणी ही वेदज्ञान का आधार।
मैत्रेयी, जान लो यह भली प्रकार,
मात्र आत्मा ही ज्ञान का आधार।

लवण खण्ड ज्यों जल में होते लीन,
उसी रूप में उनको ढूँढना अर्थ विहीन।
लवण का स्वाद, लवण का प्रमाण,
ऐसे ही जानो आत्मा अनन्त अपार।

प्रेत होकर न रहता आत्मा का ज्ञान,
प्रेत की आत्मा का नष्ट होता नाम।
पंच तत्व में ही विलय और उत्थान,
इसमें मानो याज्ञवल्क्य ही प्रमाण।

कहा मैत्रेयी ने तत्काल—
'यह कैसा विचित्र भ्रम जाल?
यहाँ मोहित कर रहे भगवान,
स्पष्ट कह, दूर करो अज्ञान।'

याज्ञवल्क्य ने किया समाधान—
अरे मैत्रेयी, यह है शुद्ध विज्ञान।
इसमें लेशमात्र नहीं भ्रम जाल,
यह है एक शुद्ध सत्य त्रिकाल।

जहाँ पर होता दो का भाव,
वहीं पर होता क्रिया-कलाप।
अन्य ही देखता है अन्य को,
अन्य ही सुनता है अन्य को।

अन्य ही सूँघता है अन्य को,
अन्य ही पुकारता है अन्य को।
अन्य ही मानता है अन्य को,
अन्य ही जानता है अन्य को।

आत्मा जब हुआ आत्मा में लीन,
देखना, सुनना, सूँघना अर्थ विहीन।
आत्मा में निहित विश्व का ज्ञान,
विज्ञाता को फिर कौन सकेगा जान।

पंचम् ब्राह्मण

भूमि है सब जीवों का सार,
जीव हैं इस पृथ्वी का सार।
जीव और पृथ्वी में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

जल है सब जीवों का सार,
सभी जीव हैं जल का सार।
जल और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

अग्नि है सब भूतों का सार,
सभी भूत हैं अग्नि का सार।
जीव और अग्नि में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व ।

वायु है सब जीवों का सार,
जीव है इस वायु का सार ।
जीव और वायु में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व ।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व ।

सूर्य है सब जीवों का सार,
जीव सभी सूर्य का सार ।
सूर्य और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व ।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व ।

दिशायें सब जीवों का सार,
जीव है सभी दिशा का सार ।
दिशा और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व ।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व ।

चन्द्र है सब जीवों का सार,
सभी जीव चन्द्र का सार ।
चन्द्र और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व ।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व ।

विद्युत सब जीवों का सार,
जीव है इस विद्युत का सार।
विद्युत और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

मेघ है सब जीवों का सार,
जीव है सब मेघों का सार।
मेघ और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

आकाश है सब जीवों का सार,
जीव है इस आकाश का सार।
आकाश और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

धर्म है सब जीवों का सार,
सभी जीव धर्म का सार।
धर्म और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

सत्य है सब धर्मों का सार,
सभी धर्म सत्य का सार।
सत्य और धर्म में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

मनुष्य है सब जीवों का सार,
जीव है इस मनुष्य का सार।
मनुष्य और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

आत्मा सब जीवों का सार,
जीव है इस आत्मा का सार।
आत्मा और जीव में व्याप्त,
जो शाश्वत तेजोमय अमरत्व।

वही है परा प्राण परब्रह्म,
वही अध्यात्म, वही है सर्व।

पंच महाभूत सूर्य और चन्द्र,
विद्युत वर्षा तथा जीव वृन्द।
सब लोक, देव, इन्द्रिय संसार,
आत्मा का सब पर अधिकार।

सभी एक आत्म तेज से व्याप्त,
एक ही आत्मा का व्यवहार।
एक ही आत्म तेज इनका आधार,
आत्मा से ही इनका विस्तार, प्रसार।

मैत्रेयी! यही है सब विद्याओं का सार,
किया ऋषि दधीचि ने इसका प्रचार।
किया एक उग्र कर्म, उस पर करो विचार,
ग्रहण करो त्याग, बलिदान, ज्ञान का सार।

दधीचि ने दिया अश्वियों को ज्ञान,
देख कर उनकी क्षमता तथा अज्ञान।
स्वयं हो गये उन अश्वियों के समान,
दिया ऋषि ने मधु विद्या का दान।

इस ब्रह्म की रचना अमित अपार,
रचे पशु पक्षी मनुज अनेक प्रकार।
व्याप्त है यह सब शरीरों के मध्य,
न कोई लोक लोकान्तर इसके अन्य।
धारण करता रूप प्रतिरूप विशाल,
मात्र वह माया का ही इन्द्रजाल।
अपार है इसका इन्द्रिय समूह,
यह है एक विस्तृत असीम व्यूह।
ब्रह्म का नहीं आदि मध्य और अन्त,
इसी से कहलाता है यह अनन्त।
इस ब्रह्म के परे कुछ भी नहीं,
मैत्रेयी, ज्ञान का अनुशासन है यही।



द्वितीय अध्याय : षष्ठम् ब्राह्मण

इस ब्राह्मण में ऋषि परम्परा का वर्णन है। अध्यात्म ज्ञान को विकसित करने में साठ पीढ़ियों के योगदान को यह ब्राह्मण दर्शाता है।

आदि ब्रह्म को सादर प्रणाम।

परमेष्ठी को प्रथम प्राप्त हुआ ज्ञान,
सनग सनातन ने किया इसका प्रचार।
सनारु व्यष्टि विप्रचित्ति के गहन विचार,
एकर्षि प्रध्वंसन की परम्परा अपार।

मृत्यु प्राध्वंसन ने किया इसका मान,
दधीचि, अश्विनी, अथर्वा ऋषि महान्।
विश्वरूप, आभूति ने जाना इसका सार,
आयास्य, पन्था सौभर का योगदान।

वत्सनपातवाभ्रव, विदर्भि कौण्डिल्य,
विदर्भि कौण्डिल्य, गालव, कुमार हारीत।
कैशोर्यकाप्य, शाण्डिल्य और वात्स्य,
गौतम, गौतम माण्टि तथा आत्रेय।

भारद्वाज, आसुरि, औषजन्धनि,
त्रैवणी, आसुरायण और यास्क।
जातूकर्ण्य तथा ऋषि पाराशर्य,
पाराशर्यायण तथा घृतकौशिक।

वैजवापायन, मनीषी कौशिकायनि,
वैजवापायन और महान् पाराशर्य।
भारद्वाज, गौतम तथा भारद्वाज,
भारद्वाज, भारद्वाज, गौतम।

पाराशर, सैतव, प्राचीन योग्य,
गौतम, अनभिम्लात, आनभिम्लात।
अग्निवेश्य, शाण्डिल्य, अग्निवेश्य,
गौतम, कौशिक और शाण्डिल्य।

कौण्डिल्य, कौशिक, गोपवन,
पौतिभाष्य तथा गोपवन।
गोपवन तथा पौतिभाष्य,
ऋषि परम्परा आराध्य।

इस ऋषि परम्परा को नमन्,
उनके प्रति शत - शत बार नमन्।
खोजते रहे शताब्दियों तक जो ब्रह्म,
उन मनीषियों को शत-शत नमन्।

अजातशत्रु का स्पष्ट निदान,
शिराओं में प्रवाहित जो प्राण।
वही है अध्यात्म, ब्रह्म तथा सर्व,
वही उपनिषदों का सत्य का सत्य।

याज्ञवल्क्य का शुद्ध स्पष्ट विज्ञान,
प्रेत होने पर आत्मा का मिटता ज्ञान।
आत्मा होती जा आत्मा में लीन,
अन्य का अस्तित्व अर्थ - विहीन।

तृतीय अध्याय : प्रथम ब्राह्मण

राजा जनक की सभा

इस सभा में अनेक विद्वानों ने ऋषि याज्ञवल्क्य के विचारों पर शास्त्रार्थ किया। सर्वप्रथम होता अश्वल ने शास्त्रार्थ का शुभारम्भ किया।

अश्वल—याज्ञवल्क्य संवाद

अश्वल— याज्ञवल्क्य ! आपके मतानुसार सब प्राणी मृत्यु से ही प्राप्त होते हैं, मृत्यु में ही व्याप्त हैं तथा मृत्यु में ही समाप्त होते हैं, तो मनुष्य किस प्रकार मुक्ति प्राप्त कर सकता है ?

याज्ञ०— होता की वाणी जो अग्निरूपा हो अर्थात् प्रेरणादायक हो, वही व्यक्ति को मुक्ति प्रदान करती है।

अश्वल— दिन और रात से संसार ग्रहित है, इनसे कौन मुक्ति प्रदान करता है ?

याज्ञ०— दिन और रात से चक्षु ही मुक्ति प्रदान करता है, अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान ही दिन-प्रतिदिन के जीवन में मुक्तिदाता है।

अश्वल— शुक्ल, कृष्ण पक्ष से किस प्रकार मुक्ति प्राप्त होती है ?

याज्ञ०— जीवनी शक्ति ही शुक्ल, कृष्ण पक्ष से मुक्ति देती है।

अन्य प्रश्नों के उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा—

1. शुद्ध मन ही यज्ञ की रक्षा करता है।
2. यज्ञ की ज्वाला तथा ऋचा, प्रेरणा का स्रोत हैं।
3. स्रोत गान का आधार शरीर में स्थित प्राण, अपान और व्यान ही हैं।

उपरोक्त स्पष्टीकरण से होता अश्वल संतुष्ट हुए और शास्त्रार्थ का मंच त्याग कर वे अपने आसन पर बैठ गये।

□ □ □

प्रथम ब्राह्मण

समय था द्वापर-त्रेता की संधि का,
युग था देश की असीम समृद्धि का।
सीता के स्वयंवर में,
मिट गया द्वेष ब्रह्म क्षात्र का।
लंका के भीषण समर में,
अन्त हुआ देवासुर संग्राम का।
युग समाप्त हुआ,
दधीचि, शिवि, राजा हरिश्चन्द्र का।
भूमि पर राज्य था—
निष्कंटक, राजा रामचन्द्र का।

●

राजा जनक ने किया यह विचार,
युद्ध-दग्ध जाति के मिटे हैं संस्कार।
क्षुब्ध थे नृप देख लोक-व्यवहार,
आर्य जाति ने हैं खो दिए सद्विचार।
संस्कारप्रद हो हमारा कर्मकाण्ड,
बुद्धिगम्य हो समस्त अध्यात्म ज्ञान।

एकत्र हों देश के,
सभी शीर्षस्थ विद्वान।
इस समस्या का,
खोजें वे मिलकर निदान।
ग्रन्थों का हो मन्थन,
आरण्यकों पर हो विचार।
शाश्वत मूल्यों का—
करें वे निर्धार।

●

गउएँ प्राप्त करेगा वह एक हजार,
प्रत्येक के साथ स्वर्ण मुद्रा भी चार।
अधिकारी होगा वही विद्वान,
समस्या का जो करे समाधान।

सभा में याज्ञवल्क्य ऋषि ने,
किया उद्घोष उस काल।
सौम्य धेनु ले जाओ,
आश्रम हेतु तत्काल।

त्याग कर उपहार का अर्थलाभ,
विद्वान करें निष्काम शास्त्रार्थ।
होता अश्वल ने की, यह चुनौती स्वीकार,
प्रश्नों से लगे खोजने, याज्ञवल्क्य के विचार।

अश्वल :

सभी प्राणी होते मृत्यु ही से प्राप्त,
तथा सर्वदा मृत्यु में ही वे व्याप्त।
अन्त में होते मृत्यु में जा समाप्त,
कैसे करें व्यक्ति अमरत्व प्राप्त ?

याज्ञवल्क्य :

यज्ञरूप होता ही अमरता का स्रोत,
अग्नि है वाणी, प्रेरणा से ओतप्रोत।
प्रेरणा ही मुक्ति का उद्गम विशाल,
प्रेरणा ही देती अतिमुक्ति सर्वकाल।

अश्वल :

सबको खा रहे दिन और रात,
कैसे इनसे मुक्ति पाये यजमान ?

याज्ञवल्क्य :

स्पष्ट दृष्टि ही होता इस लोक में,
चक्षु ही आदित्य ज्ञान के लोक में।
ज्ञान ही मुक्ति का उद्गम विशाल,
ज्ञान ही देता अतिमुक्ति सर्वकाल।

अश्वल :

शुक्ल कृष्ण पक्ष से है विश्व व्याप्त,
किस भाँति जीव करें मुक्ति प्राप्त ?

याज्ञवल्क्य :

जीवनी शक्ति ही होता ऋतु मास का,
प्राण ही खोलता द्वार अति मुक्ति का।
प्राणहीन के लिये न ऋतु मास पक्ष है,
प्राण ही है उद्‌गाता यहां मुक्ति का।

अश्वल :

यह अन्तरिक्ष दिखता निरावलम्ब है,
स्वर्ग प्राप्ति का फिर क्या अवलम्ब है ?

याज्ञवल्क्य :

मनोमय जो ब्रह्म है,
शुद्ध मन चन्द्र रूप है।
शुद्ध मन ही वह सोपान है,
जो मुक्ति करता प्रदान है।

अश्वल :

होता की वाणी ही यदि अग्नि हो,
फिर इन ऋचाओं का क्या अर्थ हो ?

याज्ञवल्क्य :

पुरानुवाक्या यज्या शस्या,
यज्ञ की मुख्य यही है ऋचा।
आरम्भ में उच्चारित अनुवाक्या,
मध्य में अनुशासित करे यज्या।
प्रशंसनार्थ कही जाये जो शस्या,
इनसे न प्राप्त होता कोई पदार्थ है,
प्राणी मात्र के ही हितार्थ है।

अश्वल :

कितनी आहुतियाँ आज दी जाएँगी,
यज्ञकर्त्ता को ये कहाँ ले जायेंगी ?

याज्ञवल्क्य :

यज्ञ वह्नि नहीं है मात्र दर्शनार्थ,
दर्शाती है जीवन का यह यथार्थ।
ऊर्ध्वगामी तेजोमयी ज्वाल निःशब्द,
निर्मल त्यागमय संन्यास जीवन स्वच्छन्द।

ज्वालायें उठें करतीं प्रचण्ड नाद,
जीवन संघर्ष का हैं वे शंखनाद।
जल रहीं, बुझ रहीं और धूम्रमयी,
अन्नजीवी की कहानी कह रहीं।

अश्वल :

कितने देवताओं से आज,
यज्ञ-रक्षा करेगा यजमान ?

याज्ञवल्क्य :

एक ही देव यज्ञ - रक्षा में समर्थ,
मन जीत कर ही रक्षित होता है यज्ञ।

अश्वल :

कितने स्तोत्र इस यज्ञ को करेंगे पुनीत ?

याज्ञवल्क्य :

तीन ही स्तोत्र से आज होगा उद्‌गीथ।
पुरानुवाक्या यज्या शस्या,
इन से ही होता है यज्ञगान।
प्राण अपान और
शरीर में सर्वत्र व्यापी व्यान।
यही तीन माने गये—
मंत्र गान का आधार।

पृथ्वी अन्तरिक्ष द्युलोक का ज्ञान,
इन्हीं से प्राप्त करता है यजमान।
यही सम्पूर्ण यज्ञ विद्या का सार,
अश्वल ने किये यह तर्क स्वीकार।

तृतीय अध्याय : द्वितीय ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—आर्तभाग संवाद

ऋषि आर्तभाग ने प्रश्न किया कि कितने ग्रह तथा अतिग्रह हैं ? (आर्तभाग का आशय ग्रहों तथा नक्षत्रों का मनुष्य जीवन पर क्या प्रभाव है, यह जानना था)

याज्ञवल्क्य ने कहा—शरीर के अंग-प्रत्यंग ही ग्रह हैं तथा जिस कार्य के लिये यह बने हैं, वही उनके अतिग्रह हैं। मनुष्य अकर्मण्यता के ही कारण दुखी होता है। मनुष्य के कर्म ही उसके भाग्य का निर्णय करते हैं।

आर्तभाग ने प्रश्न किया—सभी प्राणी मृत्यु का आहार हैं, तो मृत्यु किसका आहार है ?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—मृत्यु का स्थूल रूप अग्नि है तथा अग्नि में व्याप्त भिन्न - भिन्न वायुतत्वों का यौगिक जल है। इस प्रकार मृत्यु जल का आहार है। मृत्यु शुद्ध आदि प्रेरणा है, इसी ने सृष्टि का निर्माण किया है।

आर्तभाग— आज जो शव भूमि पर पड़ा है, जिसके प्राण ऊध्वगामी हो गये, वह कौनसी प्रेरणा देता है ?

याज्ञवल्क्य— प्राण सर्वव्यापी है। इस शव के चारों ओर प्राण ही प्राण है, शव में भी प्राण है। मात्र जो चल रहा था, आज अचल हो गया है।

आर्तभाग— मृत्यु के समय मनुष्य को कौन नहीं त्यागता ?

याज्ञवल्क्य— मनुष्य का नाम उसके साथ रहता है।

आर्तभाग— सड़े-गले शरीर के नाम का क्या महत्व ?

याज्ञवल्क्य और आर्त भाग ने अन्तिम निर्णय दिया कि शरीर द्वारा संपादित कर्म ही नाम का आधार होता है।

□□□

द्वितीय ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—आर्तभाग संवाद

जरत कारु ऋषि के पुत्र आर्तभाग,
दुखियों के दुख वे लेते थे बाँट।
सरल हृदय निष्कपट और उदार,
दुःखों के कारण पर करते विचार।

व्यक्ति क्या दुखी होता निज दोष से,
प्राप्त होता दुःख को क्या ग्रह योग से।
अनेकों हैं नक्षत्र, असंख्य ग्रह - समूह,
मनुष्य को दुखी क्या करे यह व्यूह।
इस हेतु उनने पूछा सरल एक प्रश्न,
ऋषि ! कितने हैं ग्रह तथा अतिग्रह ?

याज्ञवल्क्य :

आठ ही हैं ग्रह तथा अतिग्रह।

श्वास - प्रश्वास है एक ग्रह,
गन्ध ही है उसका अतिग्रह।
श्वास-प्रश्वास जीवन का आधार,
गन्ध निर्णय अतिरिक्त कार्य भार।

वाणी है दूसरा ग्रह निर्विकार,
अतिग्रह नाम का उस पर अधिकार।
नाम के बिना न वाणी का प्रभाव,
संज्ञा में ही निहित शब्द का प्रमाण।

जिह्वा भी एक ग्रह, करो यह विचार,
'रस' अतिग्रह का उस पर अधिकार।
रसहीन आहार जिह्वा देती है त्याग,
रस हेतु हुआ जीभ का निर्माण।

चक्षु भी माना गया एक ग्रह है,
रूप-स्वरूप उसका ही अतिग्रह है।
रूप का चक्षु पर प्रभाव,
विदित है सर्वदा निर्विवाद।

निश्चय ही कान एक ग्रह है,
अतिग्रह शब्द से वह ग्रहित है।
कान पर शब्द का अधिकार,
श्रवण ही कान का आधार।

मन भी निश्चय एक ग्रह है,
कामना से ही वह ग्रसित है।
मन जो हो कामना विहीन,
वास्तव में अस्तित्व विहीन।

निश्चित हाथ है एक ग्रह,
कर्म का हाथ पर अधिकार।
हाथ यदि होवे कर्म विहीन,
निरुपयोगी अंग अर्थ विहीन।

निश्चित त्वचा एक ग्रह महान्,
स्पर्श का त्वचा पर अधिकार।
त्वचा यदि होवे स्पर्श विहीन,
निश्चित किसी रोग में है लीन।

याज्ञवल्क्य का कथन स्पष्ट—
न सूर्य, न चन्द्र, न शुक्र,
न बुध, न गुरु, न मंगल,
न शनि, न कोई अतिग्रह।
नहीं हैं यह ग्रह कष्ट के हेतु,
निष्क्रियता ही प्रबल दुख का हेतु।
मिटा ग्रह अतिग्रह का विवाद,
मृत्यु पर किया आर्तभाग ने संवाद।

आर्तभाग :

मृत्यु के ही हैं हम आहार,
मृत्यु है फिर किसका आहार ?

याज्ञवल्क्य :

प्रश्न पर पुनः करो आर्तभाग, विचार—
मृत्यु है शुद्ध अग्नि, शक्ति निर्विकार।
इसी ने किया जल का आविष्कार,
जल द्वारा ही हुआ अग्नि का संहार।
धरा को मिला एक निश्चित आकार,
अग्नि स्वयं ही हो गई जल का आहार।
अग्नि से हुआ समस्त निर्माण,
है महान् गहन यह विज्ञान।
इसी को जानकर विद्वान,
मृत्यु को जीतता मतिमान।
आर्तभाग, यह जान लो भली प्रकार,
मृत्यु है, मृत्यु के ज्ञान का आहार।
मृत्यु नहीं, निष्क्रियता से ओतप्रोत,
मृत्यु है अजस्र प्रेरणा का स्रोत।
मृत्यु जब अग्निरूपा हो गई,
सृष्टि निर्माण में रत हो गई।
मृत्यु का यह सतत आह्वान,
है मानवी प्रेरणा का विधान।

आर्तभाग :

भूमि पर पड़ा आज जो प्रेत,
दे रहा किस अग्नि का संकेत ?
प्राण इसका ऊर्ध्वगामी हो गया,
अथवा कहो क्या कुछ और हो गया ?

याज्ञवल्क्य :

प्राण नहीं गया ऊपर की ओर,
न ही यह गया नीचे की ओर।
न गया उत्तर अथवा दक्षिण की ओर,
न हिला पूर्व और पश्चिम की ओर।

कहीं पर यह गया ही नहीं,
प्राण है इस प्रेत में भी यहीं।
जैसे प्राणमय पाषाण और रेत,
वैसे ही प्राणमय यह प्रेत।

मात्र जो था चल, अचल हो गया,
आनन्द की मूर्च्छा में आज सो गया।

आर्तभाग :

मरता है यह पुरुष जिस काल,
नहीं त्यागता उसे कौन उस काल ?

याज्ञवल्क्य :

साथ उसके रहता है नाम,
असंख्य महानुभवों का नाम।
अनन्त काल तक रहता विद्यमान,
नाम ही महापुरुषों का कीर्तिमान।

जैसे विश्वेदेव अनन्त,
नाम भी वैसे ही अनन्त।
नाम ही जीतता लोक अनन्त,
नाम का कभी न होता अन्त।

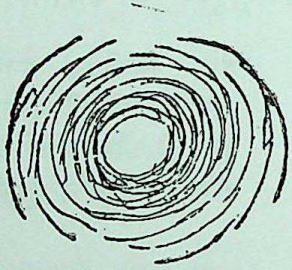
आर्तभाग :

मृत की वाणी हो अग्नि में विलीन,
शरीरस्थ आकाश महाकाश में लीन।
वायु खींच कर ले जाती उसका प्राण,
मन चन्द्रमा में, नेत्र सूर्य में करते प्रयाण।
औषधि होते लोम, वनस्पति पातीं केश,
पृथ्वी पा जाती शरीर का अवशेष।
जल में मिल जाता वीर्य और रक्त,
शरीर होता पूर्णतया निःसार अशक्त।

शरीर यह नाशवान निष्प्राण,
कैसे हुआ यह नाम का आधार ?

याज्ञवल्क्य :

एकान्त में बैठकर, हे तात !
करें गम्भीर चिन्तन, विचार ।
दोनों ऋषियों की वार्ता का परिणाम,
शरीर द्वारा संपादित कर्म नाम का आधार ।



तृतीय अध्याय : तृतीय ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—भुज्यु संवाद

लह्य के पौत्र भुज्यु ने प्रश्न किया कि अनेक अश्वमेध यज्ञ करने वाले नरेश इस संसार में हो गये हैं। वे कहाँ हैं, उनके कर्म और उनका इतिहास सभी काल के गर्त में विलीन हो गये हैं। फिर भी गन्दर्भ उनके गीत गाते हैं। इस स्थिति में कैसे स्वीकार करें कि कर्म ही नाम का आधार है ?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि यद्यपि उन नरेशों का इतिहास आज लुप्त हो गया है, किन्तु उनका जो व्यष्टि का समष्टि के प्रति दान था, अर्थात् व्यक्ति ने जो अपने-आप को समाज हेतु समर्पण किया, यही उनका यश वायु में व्याप्त हो गया है। गन्दर्भ उसी महान् बलिदान भाव के गीत गाते हैं।

□ □ □

तृतीय ब्राह्मण

तब भुज्यु ने किया प्रश्न सुविचार,
याज्ञवल्क्य, आपके मतानुसार—
शुद्ध मन ही है मुक्ति का आधार,
प्राण ही मंत्रगान का आधार।

ग्रह अतिग्रह शरीर में ही व्याप्त,
मृत्यु आनन्द की एक मूर्च्छा मात्र।
नाम जो बचता मृत्यु के उपरान्त,
वह केवल कर्म की ही स्मृति मात्र।

हुए अश्वमेध याजी जो नरेश,
आज वे हो गए मात्र नाम शेष।
उनके समस्त कार्य भी हो गए लुप्त,
इतिहास भी उनके विषय में सुप्त।
चारण कर रहे उनका कीर्तिगान,
कैसे मानें कर्म को नाम का आधार ?

याज्ञवल्क्य :

बत्तीस दिन और बत्तीस रात,
जिनके अश्व चले सतत निर्बाध।
उससे दुगुनी धरती को जीत,
वे भूपति पहुँचे समुद्र के तीर।

भूमि और सागर के मध्य,
जो क्षीण वायु रेखा भव्य।
वहीं पर अंकित उनका कीर्तिमान,
अविज्ञात अश्वारोहियों का बलिदान।

व्यष्टि का समष्टि के प्रति दान,
यही था उनका कर्म महान्।
वायु ही गाता जिनका यशोगान,
वे ही मृत्यु को जीत गए मतिमान।
जब सुप्त हों इतिहास और पुराण,
हैं गन्दर्भ ही गाते उनके गान।

तृतीय अध्याय : चतुर्थ ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—उषस्त संवाद

उषस्त : प्रत्यक्ष ब्रह्म कैसा है ?

याज्ञवल्क्य : जो श्वास भीतर जा रहा है, तथा बाहर आ रहा है, कण्ठ में स्थित है, शरीर में व्याप्त है—वही प्रत्यक्ष ब्रह्म है।

उषस्त : यह तो बहुत ही स्थूल विचार है, जो कि ब्रह्म की गरिमा के अनुरूप नहीं है।

याज्ञवल्क्य ने उनके इस प्रश्न का समाधान सहज रूप से कर दिया।

□ □ □

चतुर्थ ब्राह्मण

चाक्रायण उषस्त :

जो सर्वव्यापी आत्मा माना गया,
तथा जो प्रत्यक्ष ब्रह्म भी है कहा गया।
वह कौन है, कैसा है, कहाँ है—
इस विषय में क्या मत आपका है ?

याज्ञवल्क्य :

जो श्वास भीतर आ रहा,
जिसको कहा अपान है।
जो श्वास बाहर आ रहा,
जिसको कहा प्राण है।
कण्ठ में जो है स्थित,
वही वायु उदान है।
शरीर में सर्वत्र व्याप्त,
वही वायु व्यान है।

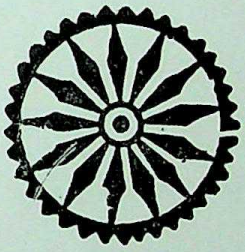
जो प्राण और अपान है,
जो उदान तथा व्यान है,
वही प्रत्यक्ष परब्रह्म है—
सर्वव्यापी आत्मतत्व है।

चाक्रायण उषस्त :

जो आप कह रहे हैं अभी,
मानने योग्य न है कभी।
जो आत्मा है, परब्रह्म है,
क्या वह अश्व, गो तुल्य है ?
आप कह गए उसे भौतिक पदार्थ है,
क्या परब्रह्म का यही यथार्थ है ?

याज्ञवल्क्य :

नेत्र को वह दृष्टि देता,
किन्तु दृष्टि से वह दूर है।
कर्ण की वह श्रवण क्षमता,
किन्तु श्रवण से अति दूर है।
मनन शक्ति का है वह मन्ता,
किन्तु मन चिन्तना से दूर है।
विज्ञान का आधार है,
विज्ञान से अति दूर है।
वही है आत्मा व्यक्ति का,
वही है आत्मा सर्व का।



तृतीय अध्याय : पंचम ब्राह्मण

कुषीतक ऋषि के पुत्र कहोल ने प्रश्न किया—'जो आत्मा अपरोक्ष है, वह कैसा है ?'

याज्ञवल्क्य ने कहा—'यह आत्मा भूख, प्यास, शोक, मोह से परे है। इसका प्रत्यक्ष रूप हमें ब्रह्मवेत्ता के जीवन के अध्ययन से प्राप्त होता है। इस प्रकार हमें प्रत्यक्ष ब्रह्म का कुछ-कुछ आभास मिलता है।

□ □ □

पंचम ब्राह्मण

कहोल :

जो साक्षात् प्रत्यक्ष परब्रह्म है,
आत्मा ही जिसका नाम है।

उसी की व्याख्या करो,
उसी की ही चर्चा करो।
जो नहीं अव्यक्त है,
सर्व में जो व्याप्त है।

याज्ञवल्क्य :

भूख उसको लगती नहीं,
प्यास भी उसे लगती नहीं।
वह शोक - मोह से परे,
जरा - मृत्यु से भी परे।

ब्रह्मज्ञानी उसको जानते,
पुत्र - कामना हैं त्यागते।
धन कामना को त्यागते,
भिक्षुक वृत्ति को हैं धारते।

लोकेषणा को त्याग कर,
पाण्डित्य दम्भ दूर कर।
मुनि - वृत्ति वह धारण करें,
आदि सत्य की जिज्ञासा करें।

अमौन मौन से जो पार है,
ब्रह्मवेत्ता वही संसार में।
इससे भिन्न जो ज्ञान है, विज्ञान है,
वह सनातन दुःख है, अज्ञान है।

तृतीय अध्याय : षष्ठम् ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—गार्गी संवाद : भाग १

विदुषी गार्गी ने अनेक प्रश्न किये। ऋषि याज्ञवल्क्य ने सभी प्रश्नों का उत्तर दिया। अन्त में गार्गी ने प्रश्न किया कि 'ब्रह्मलोक किस में स्थित है ?

याज्ञवल्क्य ने कहा—'यह अतिप्रश्न है। ऐसे प्रश्न शास्त्रार्थ में वर्जित हैं।'

गार्गी मौन हो गई।

□ □ □

षष्ठं ब्राह्मण

गार्गी : सब प्राणी जल से ओतप्रोत हैं,
फिर यह जल किससे ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य : सम्पूर्ण जल वायु से ओतप्रोत है,
जल एकमात्र वायु में ही स्थित है ।

गार्गी : यह वायु किसमें स्थित है ?

याज्ञवल्क्य : वायु अन्तरिक्ष में स्थित है ।

गार्गी : अन्तरिक्ष लोक किसमें स्थित है ?

याज्ञवल्क्य : अन्तरिक्ष गन्धर्व लोक में स्थित है ।
अन्तरिक्ष के गन्धर्व ही गाते हैं गीत,
जिनका न कोई वर्तमान, भविष्य, अतीत ।

गार्गी : गन्धर्व लोक किस में स्थित है ?

याज्ञवल्क्य : आदित्य में है गन्धर्वों का वास,
आदित्य ही जग को देता प्रकाश ।
आदित्य ही करता वायु का निर्माण,
वायु के आधीन ही सर्व गन्धर्व गान ।
वायु-हीन जगत में न शब्द, न गान ।

गार्गी : आदित्य लोक का कहाँ है स्थान ?

याज्ञवल्क्य : आदित्य का मात्र चन्द्र ही स्थान,
चन्द्र का मन पर एकाधिकार,
मन विहीन निरर्थक गन्धर्व गान ।

गार्गी : चन्द्र लोक किस से ओतप्रोत ?

याज्ञवल्क्य : नक्षत्रों से चन्द्र लोक ओतप्रोत ।
चन्द्र ही माना गया मानव - मन निर्विकार,
मन पर नक्षत्र रूपी इन्द्रियों का अधिकार ।

गार्गी : नक्षत्र लोक पर किस का अधिकार ?

याज्ञवल्क्य : नक्षत्रों पर देवों का अधिकार।
हमारे देव हमारे आदर्श मूर्तिमान,
इन्द्रियों के वही स्वामी मतिमान।

गार्गी : देव लोकों पर किसका मानते अधिकार ?

याज्ञवल्क्य। इन्द्र रूप आत्मा का देवों पर अधिकार।
सम्पूर्ण आदर्श, साहित्य, पुराण, इतिहास,
मात्र सर्वव्यापी आत्मा का निःश्वास।

गार्गी : इन्द्र लोक पर ऋषि याज्ञवल्क्य, किसका अधिकार ?

याज्ञवल्क्य : यज्ञ - स्रष्टा प्रजापति का आत्मा पर अधिकार।

गार्गी : यज्ञ-स्रष्टा पर किसका अधिकार ?

याज्ञवल्क्य : प्राण ब्रह्म ही यज्ञ का आधार।

गार्गी : ऋषि, सहज एक प्रश्न है—
ब्रह्मलोक किसमें स्थित है ?

याज्ञवल्क्य : गार्गी, यह अति प्रश्न है—
शास्त्रार्थ में यह वर्जित है।
ऐसे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं,
ऐसे प्रश्नों का समाधान नहीं।
तुम पूछती ही रहोगी,
प्राप्त कुछ भी न कर सकोगी।



तृतीय अध्याय : सप्तम् ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—उद्दालक संवाद

ऋषि उद्दालक ने प्रश्न किया—

'संसार किस सूत्र में गुथा है ?'

याज्ञवल्क्य ने कहा—

'संसार वायु रूपी सूत्र में गुथा है ।'

उद्दालक ने दूसरा प्रश्न किया—

'अन्तर्यामी कौन है ?'

याज्ञवल्क्य ने कहा—

'आपका आत्मा ही अन्तर्यामी है ।'

फिर आत्मा का वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से किया ।

□ □ □

सप्तम् ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—उद्दालक संवाद

इस शास्त्रार्थ में भाग लेने के लिये,
आरुणि उद्दालक प्रस्तुत हो गये।

उद्दालक :

काप्य पतञ्जल के शिक्षा सदन में,
जब हम अध्ययन कर रहे थे।
अथर्वा ऋषि के पुत्र वहाँ आ गये,
ऋषि कबन्ध थे वे नाम से।
गन्धर्व जाति में उत्पन्न वे थे,
गहन प्रश्न वे यह करने लगे।

मनीषियो, क्या कभी किया विचार है,
किस सूत्र में गुथा हुआ संसार है ?
कौन प्राणीलोक तथा परलोक में,
नित वास कर रहा प्राणी मात्र में ?
चर-अचर का जो है नियन्ता,
सृष्टि का भी जो सूत्र कर्ता।

जो जानता इस सूत्र को, वेदवित् है वही,
लोकवित, भूतवित्, आत्मवित्, कहलाता वही।

हम सब ने किया उसी क्षण स्वीकार,
नहीं जानते भगवन्, हम आपका विचार।

इस महान् विचारधारा का क्या सार है,
क्या आपका भी इस विषय में अज्ञान है ?
सब कहते कि इस ज्ञान को वे हैं जानते,
पर इस विषय में सब दम्भ ही बखानते।
यदि आप भी कहेंगे ऐसा कुछ यहीं,
ब्रह्मवेत्ता माने जायेंगे कभी नहीं।

याज्ञवल्क्य :

ऋषि ने कहा तब अति शांत दृढ़ स्वर में,
इस विषय में उद्दालक, नहीं अज्ञ मैं।
कबन्ध की विचारधारा जान लीजिये,
इस सभा में उसी पर विचार कीजिये।

वायु रूपी सूत्र में गुथा यह संसार है,
वायु ही जीवन का एकमात्र सार है।
वायुहीन प्रेत को जो हैं देखते कभी,
अंग-प्रत्यंग शिथिल निर्जीव पाते हैं सभी।

उद्दालक :

यह तथ्य सत्य है, पूर्णतया स्वीकार है,
अन्तर्यामी के विषय में क्या विचार है ?

याज्ञवल्क्य :

जो पृथ्वी के अन्तरतम में है,
किन्तु जो पृथ्वी से पृथक् है।
पृथ्वी देह उसकी कही गई,
पर यह ज्ञान पृथ्वी को नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो जल के प्रत्येक बिन्दु में है,
किन्तु जो जल से भी पृथक है।
जल देह उसकी कही गई,
पर ज्ञान यह जल को नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो अग्नि के स्फुलिंग में है,
किन्तु अग्नि से भी पृथक् है।
अग्नि देह उसकी कही गई,
पर यह ज्ञान अग्नि को नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

वह वायु में स्थित है,
किन्तु वायु से पृथक् है।
वायु उसकी देह है मानी गई,
पर वायु उसको जानता ही नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

वह द्युलोक में भी स्थित है,
किन्तु द्युलोक से भी पृथक् है।
द्युलोक उसकी देह है मानी गई,
पर द्युलोक उसको जानता नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

वह आदित्य में स्थित है,
किन्तु आदित्य से पृथक् है।
आदित्य उसकी देह है मानी गई,
किन्तु आदित्य उसको जानता नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

वह दिशाओं में स्थित है,
किन्तु दिशाओं से पृथक् है।
दिशायें उसकी देह हैं मानी गई,
किन्तु दिशायें जानती उसको नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

वह चन्द्र - नक्षत्रों में स्थित है,
किन्तु चन्द्र - नक्षत्रों से पृथक् है।
चन्द्र-नक्षत्र उसकी देह है कही गई,
किन्तु इसका ज्ञान है उनको नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो आकाश में स्थित है,
किन्तु आकाश से पृथक् है।
आकाश उसकी देह है कही गई,
किन्तु आकाश इसको जानता नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो तम में स्थित है,
किन्तु तम से पृथक् है।
तम उसकी देह है कही गई,
किन्तु यह ज्ञान तम को नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो तेज में स्थित है,
किन्तु तेज से भिन्न है।
तेज उसकी देह है मानी गई,
किन्तु तेज इसको जानता नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

पृथ्वी, पवन, जल, तेज, तम,
नभ, सूर्य, अग्नि तथा नक्षत्र।
सर्वव्यापी आत्मा विश्व का,
सब में स्थित, सब का नियन्ता।

अधिदैव यह है माना गया,
अधिभूत भी है यह कहा गया।
वर्णन पूर्ण हुआ अधिदैव का,
रहस्य जान लो अधिभूत का।

जो सब प्राणियों में स्थित है,
किन्तु प्राणियों से भिन्न है।
प्राणियों की देह यह मानी गई,
किन्तु प्राणी जानते इसको नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो श्वास में स्थित है,
किन्तु श्वास से भी भिन्न है।
श्वास जिसका शरीर कहा गया है,
किन्तु श्वास को न उसका ज्ञान है।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो वाणी में स्थित है,
किन्तु वाणी से भिन्न है।
वाणी है देह उसकी कही गई,
वाणी नियंत्रित उसी से हो रही।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो नेत्र में स्थित है,
किन्तु नेत्र से भिन्न है।
नेत्र उसकी देह है मानी गई,
दृष्टि उसी से नियंत्रित हो रही।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो श्रोत्र में स्थित है,
किन्तु श्रोत्र से भिन्न है।
श्रोत्र उसकी देह है कही गई,
श्रोत्र को नियंत्रित कर रहा वही।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो मन में स्थित है,
किन्तु मन से भिन्न है।
मन भी देह उसको मानी गई,
मन को नियंत्रित करता है वही।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

वह त्वचा में स्थित है,
किन्तु त्वचा से भिन्न है।
त्वचा देह उसकी है मानी गई,
किन्तु त्वचा को ज्ञान उसका नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो विज्ञान में स्थित है,
किन्तु विज्ञान से भिन्न है।
विज्ञान उसका शरीर कहा गया है,
किन्तु विज्ञान को नहीं यह ज्ञात है।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

जो रेत में स्थित है,
किन्तु रेत से भिन्न है।
रेत उसकी देह है कही गई,
पर रेत उसको जानता नहीं।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

हे उद्दालक, जान लो यही—
वह देखता है सब कहीं,
किन्तु दृष्टिगोचर है नहीं।
वह सुन रहा है सब कहीं,
पर सुनाई देता है नहीं।
मन द्वारा चिन्तित होता नहीं,
किन्तु सदा मनन करता है वही।
जाना नहीं जाता कभी—
किन्तु सर्वज्ञाता है वही।

वही द्रष्टा, वही मन्ता,
वही श्रोता, वही विज्ञाता।
न अन्य विज्ञाता यहाँ,
न अन्य मन्ता है यहाँ।

वही अवर्णनीय आत्मा आपका,
वही अमृतमय नियन्ता विश्व का।

यही शुद्ध विज्ञान है,
यही यथार्थ ज्ञान है।
अतिरिक्त उसके सभी अज्ञान है,
शुद्ध मन से वचन उद्दालक ने कहे,
यह सत्य है, स्वीकार है।



तृतीय अध्याय : अष्टम् ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—गार्गी संवाद : भाग २

ब्रह्मवादिनी गार्गी फिर शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हुई। गार्गी ने दो सारगर्भित प्रश्न किये—

'संसार किससे ओतप्रोत है ?'

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—'संसार आकाश से ओतप्रोत है।'

गार्गी ने फिर प्रश्न किया—

'आकाश किससे ओतप्रोत है ?'

ऋषि ने उत्तर दिया—आकाश अक्षर ब्रह्म से ओतप्रोत है।'

गार्गी की जिज्ञासा का समाधान हुआ और गार्गी ने कहा—'बस, शास्त्रार्थ का उद्देश्य पूरा हुआ, अब हम याज्ञवल्क्य को ही ब्रह्म-वेत्ता मान लें।'

□ □ □

अष्टम् ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—गार्गी संवाद

ऋत्विक होता अश्वल,
भुज्यु, कहोल, उषस्त ।
आर्तभाग तथा उद्दालक,
सभी जब हो गये निरुत्तर ।

विदुषी ब्रह्मवादिनी गार्गी

एक अतिप्रश्न कर गई,
ब्रह्म किससे ओतप्रोत है ?
शास्त्रार्थ की मर्यादा भंग कर गई,
'गार्गी', अतिप्रश्न पूछते नहीं ।

इस प्रकार गार्गी मौन हो गई,
किन्तु गार्गी की जिज्ञासा दबी नहीं ।
मौन विदुषी रह न सकी,
अनुमति ले फिर पूछने लगी ।

उठी फिर वह शास्त्रार्थ हेतु,
बनी जिज्ञासा ज्ञान मध्य एक सेतु ।

ऋषियो ! मनीषियो ! तथा ऋत्विको !
शास्त्रार्थ के मूल पर विचार हो ।
प्रश्न अनेकों यहाँ पूछे जा रहे हैं,
मूल विषय से भटकते जा रहे हैं ।

कभी अमरत्व प्राप्ति की बात है,
कभी अपरोक्ष ब्रह्म पर विचार है ।
कभी पूछते गन्धर्व की है कथा,
कभी अश्वमेध याजियों की व्यथा ।

यदि विषयांतर ऐसे होता रहा यहीं,
सभा की उपयोगिता मिटा देंगे हमीं।

मूल प्रश्न मात्र हैं दो,
ऋषि, उत्तर उन्हीं का दो।

धरातल और भूमि की कोख,
दीप्तिमय यह विशाल द्युलोक।
द्युलोक तथा इस भूमि के मध्य,
हमारा भूत, वर्तमान, भविष्य।
है किसमें स्थित, किसमें ओतप्रोत,
यही है मेरी जिज्ञासा का स्रोत।

याज्ञवल्क्य :

धरातल और भूमि की कोख,
दीप्तिमय यह विशाल द्युलोक।
द्युलोक तथा धरा के मध्य,
हमारा भूत, वर्तमान, भविष्य।

यह है सब आकाश से ओतप्रोत,
शांत क्या हुआ जिज्ञासा का स्रोत।

गार्गी :

जब सभी आकाश से ओतप्रोत हैं,
तब आकाश किससे ओतप्रोत है ?

याज्ञवल्क्य :

एक अक्षर परम ब्रह्म है,
आकाश उसी में स्थित है।
आकाश उसी से व्याप्त है,
असीम उसकी सामर्थ्य है।

न वह सूक्ष्म है, न स्थूल है,
न वह दीर्घ है, न ह्रस्व है।
अस्नेह है, छाया रहित है,
न वह लाल है, न धवल है।

छाया रहित है, तम विहीन है,
स्नेह, वायु रहित है, रसहीन है।
प्राण - वायु उसमें नहीं है,
इन्द्रियाँ भी उसकी नहीं हैं।

मात्रा रहित है, अग्राह्य है,
गन्धहीन है, तेजहीन है,
अन्तर रहित, मन विहीन है,
वह कुछ भी खाता नहीं है।
उसे कोई खाता नहीं है,
आता व जाता वह नहीं है।

इसी अक्षर से सूर्य - चन्द्र गतिमान हैं,
पृथ्वी तथा द्युलोक भी यथास्थान हैं।
काल की गति जो निरन्तर चल रही,
सरितायें जो पूर्व - पश्चिम बह रहीं।

दानी यजमान की सब प्रशन्सा,
देव गण को अर्पित सभी अर्चना।
यज्ञ, दान, तप, आदि जो क्रिया,
एक अक्षर ब्रह्म की ही विविधता।

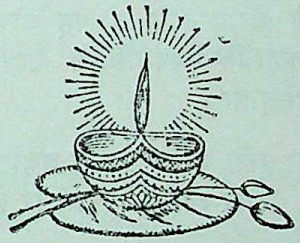
गार्गी ! अक्षर दृष्टिगोचर नहीं,
पर देखता है वह सब कहीं।
सुना वह जा सकता नहीं,
किन्तु सुन रहा वह सर्वत्र ही।

मन भी उसमें है नहीं,
पर मनन करता है वही।
वह विज्ञान का आधार है,
पर वह सदा ही अविज्ञात है।

द्रष्टा, श्रोता, तथा मन्ता है वही,
उसके अतिरिक्त कोई ज्ञाता नहीं।

उठी गार्गी ब्रह्मवादिनी सभा मध्य,
प्रज्वलित ब्रह्म ज्ञान की मूर्ति के सदृश्य।
ऋषियो, मनीषियो तथा अन्य जन सभ्य,
जो उपनिषदों का है सत्य का सत्य।
उसी को आज कह गये याज्ञवल्क्य,
शास्त्रार्थ को प्राप्त हुआ निज गन्तव्य।

आकाश से सब लोक ओतप्रोत हैं,
आकाश अक्षर ब्रह्म से ओतप्रोत है।
शेष अब कुछ कहने को है रहा नहीं,
याज्ञवल्क्य को ही श्रेष्ठ मान लें सभी।



तृतीय अध्याय : नवम् ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—विदग्ध संवाद

शाकल्य विदग्ध ने भी अनेक प्रश्न पूछे। कुछ प्रश्न देवगण से संबन्धित थे, कुछ मनुष्य के शरीर से संबन्धित थे। फिर दिशाओं के विषय में कुछ पूछा गया। ऋषि याज्ञवल्क्य ने सभी प्रश्नों का समुचित उत्तर दिया।

अन्त में याज्ञवल्क्य ने कहा—'अब आप सब ऋषि, मेरे प्रश्न का उत्तर दें।'

जिस प्रकार वनस्पति जगत में वृक्ष है, उसी प्रकार प्राणी जगत में पुरुष है।

वृक्ष कट जाने से फिर जड़ से नया उग आता है, मृत्यु से मारे गए पुरुष की किस मूल से उत्पत्ति होती है?

यदि वृक्ष मूल से उखड़ जाये, तो वह बीज से पुनः उत्पन्न हो जाता है। ऐसा न कहो कि पुरुष वीर्य से उत्पन्न होता है, कारण कि शव में कोई वीर्य नहीं होता।

मृत्यु से मारित पुरुष का एक ब्रह्म अर्थात् प्राण ही आश्रय है। वही सब सत्कर्मों का, स्थिर व्यक्तियों का और ब्रह्मवेत्ताओं का परायण है।

□ □ □

नवम् ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—विदग्ध संवाद

कल्याणकर्त्ता शकल के सुत,
पूर्ण ज्ञाता शाकल्य विदग्ध।
उद्यत हुए शास्त्रार्थ के लिये,
कुछ प्रश्न पूछने के लिये।

विदग्ध :

ब्रह्म विषयक यह ज्ञान पूर्ण है,
पूर्ण होते हुए भी अपूर्ण है।
वेद मंत्रों द्वारा जो गाये गये हैं,
यज्ञ-आहुतियों से बुलाये गये हैं।
जन - आस्था का हैं आधार जो,
उन्हीं देव वृन्द पर विचार हो।

हैं देव कितने, याज्ञवल्क्य, कहो ?

याज्ञवल्क्य।

देव संख्या मानी गई तीन हजार तीन,
तथा वह कही गई है तीन शत और तीन।
कुछ कह रहे हैं छः, कुछ कह रहे हैं दो,
अध्यर्द्ध और कुछ एक कह मौन रहे हो।

शाकल्य, मात्र इतना ही जान लो,
तेतीस ही हैं देव यह मान लो।
अन्य और भी देव जो कहे गये हैं,
इन्हीं की महिमा बखाने गये हैं।

आदित्य बारह गिने गये हैं,
रुद्र ग्यारह ही माने गये हैं।
इन्द्र और प्रजापति तथा वसु आठ,
यही देव सृष्टि पूर्ण तथा विराट्।

विदग्ध :

वसु किन्हें हैं आप मानते,
वे कौन जो वस्तु सर्व धारते ?

याज्ञवल्क्य :

अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा नक्षत्र,
सूर्य, चन्द्र, द्यौ और अन्तरिक्ष।

विदग्ध :

कौन कौन से रुद्र हैं,
क्यों कहाते ये रुद्र हैं ?

याज्ञवल्क्य :

दश इन्द्रियाँ और एक मन,
त्यागते जब हैं यह तन।
तब लोग करते हैं रुदन,
इस हेतु एकादश यह रुद्र।

विदग्ध :

आदित्य कितने हैं, कहो—
चर्चा इनके विषय में करो ?

याज्ञवल्क्य :

बारह मास ही बारह आदित्य हैं,
विदग्ध, केवल यह ही एक सत्य है।
यह समस्त सृष्टि को वहन कर रहे हैं,
बारम्बार आ रहे हैं, जा रहे हैं।
सूर्य - रश्मियों द्वारा हैं यह रचे गये,
प्राणियों की आयु को हैं यह धर रहे।

विदग्ध :

कौन इन्द्र है, कौन प्रजापति ?

याज्ञवल्क्य :

यज्ञ को प्रजापति है कहा,
यज्ञ द्वारा विश्व पोषित हो रहा।
प्रत्येक प्राणी स्वतः ही यज्ञ है,
निरन्तर सृष्टि - सेवा में वह रत है।
भूमि पर जब वह दिखता निष्चेष्ट है,
पंचतत्व का पोषण करता यथेष्ट है।

विदग्ध :

छः देव और कौन हैं ?

याज्ञवल्क्य :

पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष,
आदित्य, द्यौ तथा अग्नि।

विदग्ध :

वे तीन देव कौन हैं ?

याज्ञवल्क्य :

तीन लोक तीन देव हैं।

विदग्ध :

कहो, वे दो देव कौन हैं ?

याज्ञवल्क्य :

प्रजापति, इन्द्र ही दो देव हैं।

विदग्ध :

अध्यर्द्ध कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

वायु ही माना गया अध्यर्द्ध है,
इसी से प्राप्त होती वृद्धि है।

विदग्ध :

फिर एक देव कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

एक देव प्राण है,
वही मात्र ब्रह्म है।
'त्यत' उसका ही सर्वनाम है।
उसी से यह दर्शाया गया है।

विदग्ध :

जो वास पृथ्वी पर करे,
आत्मा वास जिसमें करे।
मन की ज्योति जिसमें जले,
अग्नि ही जिसे नियन्त्रित करे।
वह कौन है? वह कौन है?

याज्ञवल्क्य :

जो वास पृथ्वी पर करे,
आत्मा वास जिसमें करे।
मन की ज्योति जिसमें जले,
अग्नि जिसे संचारित करे।
वह देह है, स्थूल शरीर है।

विदग्ध :

इस शरीर का कौन देव है?

याज्ञवल्क्य :

वीर्य ही शरीर का देव है।

विदग्ध :

जो काम में नित्य विचरण करे,
हृदय लोक में ही जो नित्य रहे।
मन की ज्योति जिसमें जले,
आत्मा निवास जिसमें करे।
वह कौन है? वह कौन है?

याज्ञवल्क्य :

बह् काममय पुरुष है।

विदग्ध :

इस पुरुष का देव कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

स्त्रियाँ कामी पुरुष का देव हैं।

विदग्ध :

जो रूप में नित विचरण करे,
जो चक्षु में ही वास नित करे।
मन ही जिसकी ज्योति है,
आत्मा निवास जिसमें करे।
वह् कौन है ? वह् कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

वह् सूर्य है, आदित्य है,
इसको उत्पन्न करता सत्य है।

विदग्ध :

जो वास आकाश में करे,
श्रोत्र में नित रमता रहे।
मन ही जिसकी ज्योति है,
आत्मा निवास जिसमें करे।
वह् कौन है ? वह् कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

वह् कर्ण से उठती प्रतिध्वनि है,
दिशायें उसका उत्पत्ति कारण हैं।

विदग्ध :

जो वास नित तम में करे,
हृदय ही जिसका क्षेत्र है।
मन ही जिसकी ज्योति है,
आत्मा निवास जिसमें करे।
वह् कौन है ? वह् कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

वह छायामय पुरुष है,
उत्पत्ति कारण मृत्यु है।

विदग्ध :

रूप में जो वास नित करे,
हृदय ही जिसका लोक है।
मन ही जिसकी ज्योति है,
आत्मा की जो शरण है।
वह कौन है ? वह कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

वह पुरुष आदर्शमय है,
उत्पत्ति कारण प्राण है।

विदग्ध :

जो वास नित जल में करे,
हृदय ही जिसका लोक है।
मन ही जिसकी ज्योति है,
आत्मा की जो शरण है।
वह कौन है ? वह कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

जल ही पुरुष विशेष है,
वरुण ही उसका देव है।

विदग्ध :

रेत में जो वास नित करे,
हृदय ही उसका देव है।
मन ही उसकी ज्योति है,
आत्मा की जो शरण है।
वह कौन है ? वह कौन है ?

याज्ञवल्क्य :

वह पुत्र है, वह पुत्र है,
प्रजापति उसका देव है।

विदग्ध :

याज्ञवल्क्य, यदि ब्रह्म को आप जानते हैं,
तो निश्चित दिशाओं को भी जानते हैं—
तथा ज्ञान होगा दिशाओं की प्रतिष्ठा का,
तथा ज्ञान होगा दिशाओं के देवता का।

याज्ञवल्क्य :

प्राची दिशा में जो है प्रतिष्ठित,
वह देव सूर्य है, आदित्य है।
चक्षु में है वह आधारित,
रूप अवलोकन के निमित्त।
प्रयोजन रूप का है यही,
बुद्धि विकसित करता है यही।

दक्षिण दिशा में जो विचरता,
यम देवता है उस दिशा का।
यज्ञ में है वह आधारित,
यज्ञ होता दक्षिणा के निमित्त।
श्रद्धा ही दक्षिणा का आधार,
श्रद्धा हृदय का कोमल उच्च विचार।

प्रतीची दिशा में जो प्रतिष्ठित,
देव वरुण, स्वामी जल के निमित्त।
जल माना गया रज - वीर्य का आधार,
रज-वीर्य हृदय के जनन भाव का सार।

उत्तर दिशा में जो है प्रतिष्ठित,
वह देव सोम है, सत्य के निमित्त।
सत्य ही है दीक्षा का आधार,
हृदयस्थ बुद्धि करती सत्य का निर्माण।

यही हृदयस्थ बुद्धि का आलोक,
यही मानव ज्ञान का आलोक।

विदग्ध : हृदय किसमें है प्रतिष्ठित ?

याज्ञवल्क्य : शरीर में ही हृदय प्रतिष्ठित,
यदि शरीर से भिन्न होता कहीं—
पशु-पक्षी ही उसे खा जाते यहीं।

आत्मा शरीर को धारते प्राण, अपान
तथा व्यान, उदान और वायु समान।
अतएव आत्मा के विषय में नेति-नेति आदेश,
अक्षर, अविनाशी, अवद्ध, अनासक्त, अनिर्देश्य।

आयतन आठ तथा पुरुष आठ,
आठ लोक तथा देव भी आठ।
इन सब का किया मैंने निर्धार।

अतिरिक्त इसके हो कोई विचार,
पूछ लें आप सब भली प्रकार।

उपरोक्त विषयों को सोच - विचार,
ब्रह्मवादी मेरे प्रश्न पर करो विचार।

याज्ञवल्क्य :

प्रश्न याज्ञवल्क्य का गहन गंभीर,
शाकल्य विदग्ध सुन कर हुए अधोर।
उस सभा में न उत्तर कोई दे सका,
याज्ञवल्क्य का आवेश रुक न सका।

जैसे वनस्पति जगत में वृक्ष,
वैसे ही प्राणी जगत में पुरुष।
जैसे मनुष्य के यह केश तथा चर्म,
वैसे ही वृक्ष के पत्ते तथा वल्कल।
जैसे मनुष्य-शरीर में बहता रुधिर,
वैसे ही वृक्ष का गोंद तथा रस।

वृक्ष वल्कल के जो अनेक भाग,
मानो शरीर का माँस भाग।
वृक्ष की शिरायें मानवी स्नायु,
मनुष्य की अस्थियाँ वृक्ष की दारु।

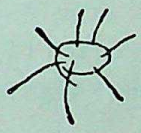
मज्जा दोनों की एक ही समान,
मेरे प्रश्न का अब हो समाधान।

यदि वृक्ष की शाखायें कट जायें,
मात्र तरु का मूल ही रह जाये—
कालान्तर में वृक्ष हरा-भरा हो जाये।
किन्तु जो पुरुष हो गया कालग्रस्त,
उसे जिलाने में कौन सा मूल समर्थ ?
न कहो वह होता रेत से उत्पन्न,
प्रेत में न होता रंच मात्र रेत अंश।

मूल से उखड़ गया जो वृक्ष,
बीज से फिर होता उत्पन्न।
किन्तु शव का नहीं वीर्य आधार,
शव मात्र वीर्य - हीन निःसार।

जन्म जो ले लेता एक बार,
नहीं वह जन्मता बारम्बार।

जो विज्ञानमय, आनन्दमय, अपरम्पार,
दानदाता स्थिर, ब्रह्मविद् का आधार।
वही अक्षर ब्रह्म शव का एकमात्र आधार,
न मृत्यु, न जन्म, न कोई अन्य व्यापार।



चतुर्थ अध्याय

याज्ञवल्क्य—जनक संवाद

यह संवाद अनेक दृष्टि से अद्‌भुत है। यह एक महर्षि और एक राजर्षि का संवाद है। याज्ञवल्क्य का चिन्तन मूल रूप से तथ्यों पर आधारित है—उसमें कल्पना के लिये, अनिश्चितता के लिये कहीं कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत राजा जनक बहुश्रुत विद्वान थे, वे याज्ञवल्क्य के ही अनुसार उपनिषद् समाहितात्मा थे, वेदज्ञान से परिपूर्ण थे, देश-पूज्य और धनवान थे। उनकी कुछ धारणायें थीं, जो याज्ञवल्क्य के विचारों के अनुकूल नहीं थीं।

याज्ञवल्क्य ने जिस प्रकार राजा जनक को उनकी धारणाओं का आदर करते हुए अपने विचारों से प्रभावित किया और अन्त में राजा ने कहा कि अब आप मुझे अपना शिष्य मानिये।

यह वार्तालाप सदैव ही पूर्वाग्रह से मुक्त मनीषियों के लिये एक आदर्श प्रस्तुत करता है। यह वार्तालाप स्वतः ही एक शिक्षा-सदन है। दोनों विचारकों के मन में कोई कटुता नहीं, कोई व्यंग्य नहीं, कोई विषयान्तर नहीं, कोई तुच्छ विचार नहीं, एक-दूसरे के प्रति कोई हीन भाव भी नहीं है।

प्रथम चरण में ऋषि ने कहा—'राजन्, आप महान् विद्वान हैं, जो आपसे किसी ने कुछ कहा हो, वह आप मुझ से कहें।'

राजा जनक ने अनेक ऋषियों के विचार याज्ञवल्क्य को सुनाये। ऋषि ने सभी विचारों का आदर किया तथा प्रत्येक विचार की विस्तार-पूर्वक व्याख्या की।

दूसरे चरण में ऋषि ने राजा से पूछा—'राजन, क्या आपने कभी सोचा है अथवा क्या किसी ने बताया है कि आप यहाँ से छूट कर कहाँ जायेंगे?' राजा ने स्वीकार किया कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता हूँ, और आप से ही जानना चाहता हूँ।

ऋषि ने कहा—'इस शरीर में प्राण, हृदय में स्थित है। इस शरीर के ऊपर-नीचे, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, सभी ओर प्राण है।

प्राण, प्राण में ही स्थित है। यह न कहीं आता है, न जाता है। लोक - परलोक केवल स्वप्न पर आधारित भ्रम - जाल है।

राजा जनक का भ्रम दूर हुआ और उन्होंने कहा—'ऋषि, अब आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार कीजिये।'

राजा की शंका मिटी नहीं। उन्होंने ऋषि से कहा—'आप मेरे चिन्तन को ऋषियों के वचनों से बाँध देते हैं, कभी अपनी प्रज्ञा से मेरी जिज्ञासा को कुण्ठित करते हैं, अतः जो मैं पूछना चाहूँ, आप मुझे वह पूछने दें।'

ऋषि ने राजा की स्पष्टोक्ति की सराहना की और कहा—'आप जो पूछना चाहें, वह पूछ लें।'

राजा ने अनेक प्रश्न पूछे। अन्त में आत्मा के विषय में प्रश्न किया, ऋषि ने सबका समाधान किया।

राजा जनक बार - बार मोक्ष के विषय में प्रश्न कर रहे थे (उनके मन में शंका थी कि ऋषि न पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं, न परलोक में, तो फिर मनुष्य का मोक्ष किस प्रकार हो सकता है ?)।

ऋषि असमंजस में पड़ गये—मैं अपना सम्पूर्ण ज्ञान भी दे चुका हूँ। राजा पर्याप्त धन भी दे चुका है, फिर भी राजा का भ्रम नहीं मिटा है।

अंत में ऋषि ने कहा—'राजन, जो एक बार जन्म ले लेता है, वह दूसरी बार जन्म नहीं लेता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, किन्तु कुछ लोग कल्पना के सहारे पुनर्जन्म तथा लोक - परलोक में विश्वास करते हैं, किन्तु दोनों ही स्थितियों में मोक्ष प्राप्ति का एक ही मार्ग है—अर्थात् ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति। दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों का एक ही पथ होता है—ब्रह्म पथ। एक ही लक्ष्य होता है—ब्रह्म ज्ञान।'

मोक्ष हिन्दू चिन्तन का अभिन्न अंग है। मानव जीव - सृष्टि के विकास - क्रम की एक कड़ी है। अपना उत्तरोत्तर विकास करते हुए मानव, महामानव बने—यही उसका मोक्ष है। ब्रह्म ज्ञान ही मोक्ष है।

इस भाव से अभिभूत हो राजा जनक ने, ब्रह्म ज्ञान के प्रचार हेतु अपना राज्य अर्पित कर दिया। □ □ □

प्रथम ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य—जनक संवाद

निज आसन पर आसीन थे राजा जनक,
उपस्थित हुए ऋषि याज्ञवल्क्य उनके निकट।

जनक :

ऋषि ! आपका आगमन आज किस हेतु है ?
आश्रम के लिये धन आकांक्षा हेतु है,
अथवा आगमन तत्व विवेचन हेतु है ?

याज्ञवल्क्य :

राजन ! आगमन के दोनों ही हेतु हैं।

नृप, आप बहुश्रुत मेधावी विद्वान हैं,
अनेक विषयों का आपको ज्ञान है।
वार्तालाप का ज्ञान ही आधार हो,
न कोई भ्रम हो, न कोई मिथ्याचार हो।
जो कहा हो आपसे किसी ने कभी,
मुझसे कहें आज वह स्वयं आप ही।
चर्चा ऋषियों के वचनों पर करें,
अध्ययन ही ज्ञान - पथ आलोकित करे।

जनक :

शैलिनी - पुत्र जित्वा ने कहा साधिकार,
वाणी ही ब्रह्म है, जान लो यह विचार।

याज्ञवल्क्य :

शिलिनाचार्य के पुत्र ने यह सत्य ही कहा,
'वाणी ही ब्रह्म हैं', यह उचित ही कहा।
माता - पिता, आचार्य द्वारा संस्कारित,
उसी व्यक्ति की श्लाघनीय है यह उक्ति।

यदि वाणी का स्वरूप आप जान लें,
वाणी ही वाणी का स्वरूप मान लें।
आश्रय है वाणी का निश्चित आकाश ही,
उच्चारित शब्द की शरण है आकाश ही।
गहन गम्भीर है वाणी का ज्ञान,
पूर्ण रूप से राजन, लें आप जान।

मित्र - शत्रु, अपने - पराये का भाव,
वाणी खोलती मन के यह भाव।
ऋग्वेद की ऋचा, सामवेद का गान,
अथर्व, यजुर्वेद का विपुल मंत्र गान।

पौराणिक गाथा, गौरवमय इतिहास,
यह सब वाणी का ही वाग्विलास।
लौकिक विद्या तथा अध्यात्म ज्ञान,
सूत्र, व्याख्यान तथा अनुव्याख्यान।

इष्ट - अनिष्ट, लोक और परलोक,
खाद्य - अखाद्य प्राणियों के भोग—
यह सब वाणी विज्ञान का संयोग॥
साहित्य श्लोकबद्ध काव्य का विकास।
मनन, पठन, लेखन, शब्द का विन्यास।
राजन, जिसका वाणी पर अधिकार,
उसको जानो मित्र सकल संसार।
परिमित होते उसके सब व्यवहार,
उसी का रहता निज मन पर अधिकार।

जनक :

ऋषि, यह उत्तम उच्च विचार,
इनका क्या मैं दूँ उपहार?
वचन आपके श्रेष्ठ और अमूल्य,
सहस्र गउओं के यह समतुल्य।

याज्ञवल्क्य :

राजन न धन की मुझे कामना है,
ज्ञानार्थ अर्पित मेरी साधना है।
मेरे पिता की सहज मान्यता है,
शिष्य के धन का हरण न करे।

जनक :

ऋषि, उदङ्क ऋषि ने कहा एक सत्य,
प्राण ही ब्रह्म है, है यही एक तथ्य।

याज्ञवल्क्य :

उदङ्क ऋषि की है यह महान् उक्ति,
कहेगा यही एक संस्कारित व्यक्ति।
प्राणहीन यह सृष्टि कुछ भी नहीं,
प्रेत को कुछ भी प्राप्त होता नहीं।

प्राण ही प्राण का रूप है,
न कोई अन्य इसके अनुरूप है।
प्राण का आधार नृप, आप जान लें,
आकाश ही आधार प्राण का मान लें।

प्राण से प्रिय यहाँ कुछ भी नहीं,
प्राण हेतु होतीं क्रियायें सभी।
होता करवाते यज्ञ नीच से,
दान भी ले लेते हैं वे नीच से।
मृत्यु की शंका न उनको डराती,
उसी ओर जाते, जहाँ मृत्यु खाती।

परिचित हो जो प्राण के गुण-दोष से,
रक्षित वह रहता है सब ओर से।

जनक :

ऋषिवर, यह उत्तम उच्च विचार,
इनका क्या हो उचित उपहार ?
वचन आपके श्रेष्ठ और अमूल्य,
सहस्र गउओं के यह समतुल्य।

याज्ञवल्क्य :

राजन न धन की मुझे कामना है,
ज्ञानार्थ अर्पित मेरी साधना है।
मेरे पिता की सहज मान्यता है,
शिष्य के धन का हरण न करे।

जनक :

चक्षु ही ब्रह्म है, चक्षु ही ब्रह्म है,
वार्ष्ण वक्कु ने मुझ से कहा है।

याज्ञवल्क्य :

निश्चित ही ऋषि ने कहा एक सत्य है,
चक्षुहीन का तो जीवन ही व्यर्थ है।
जान लो चक्षु ही चक्षु का रूप है,
अन्य इन्द्रियाँ न इसके अनुरूप हैं।
जो दिखता हमें प्रत्यक्ष, वही सत्य है,
चक्षु पर जो आधारित, वही सत्य है।

आकाश ही प्रतिष्ठा है चक्षु की,
सूर्य-चन्द्र को लाँघती गति चक्षु की।
इन्हें बेध लेती शरण आकाश की,
यही ब्रह्मत्व प्रतिष्ठा है नेत्र की।

चक्षु से जो देखे वही सत्य बोले,
न हो अन्ध-विश्वासी, न असत्य बोले।
धरा पर सभी उसको निज मित्र जानें,
हो देवों में गणना, तथा देव मानें।

जनक :

ऋषि, यह उत्तम उच्च विचार,
इनका क्या हो उचित उपहार ?
बचन आपके श्रेष्ठ और अमूल्य,
सहस्र गउओं के यह समतुल्य।

याज्ञवल्क्य :

राजन न धन की मुझे कामना है,
ज्ञानार्थ अर्पित मेरी साधना है।
मेरे पिता की सहज मान्यता है,
शिष्य के धन का हरण न करे।

जनक :

श्रोत्र ही ब्रह्म है, श्रोत्र ही ब्रह्म है,
भारद्वाज ऋषि ने यह मुझसे कहा है।

याज्ञवल्क्य :

श्रोत्र ही श्रोत्र का रूप है,
न अन्य इन्द्रिय इसके अनुरूप है।
इसी से मिलता है दिशाओं का ज्ञान,
दिशाओं में विकसित होता जो ज्ञान।
सुन कर ही हम सब उसे लेते जान,
अनन्त दिशाओं से आता है ज्ञान।

श्रोत्र की प्रतिष्ठा आकाश ही है,
दिशाओं का आधार आकाश ही है।
दिशायें अनन्त, श्रोत्र की क्षमता अनन्त,
राजन ज्ञान का विस्तार भी अनन्त।

जनक :

ऋषि, यह आपके उत्तम उच्च विचार,
इनका क्या हो उचित उपहार?
वचन आपके श्रेष्ठ और अमूल्य,
सहस्र गउओं के यह समतुल्य।

याज्ञवल्क्य :

राजन न धन की मुझे कामना है,
ज्ञानार्थ अर्पित मेरी साधना है।
मेरे पिता की सहज मान्यता है,
शिष्य के धन का हरण न करे।

जनक :

मन ही ब्रह्म है, मन ही ब्रह्म है,
सत्यकाम जावालि ने यह कहा है।

याज्ञवल्क्य :

निश्चय ही ऋषि ने सत्य ही कहा है,
मन मर गया तो जग में रखा ही क्या है।
जावालि की यह सत्य ही उक्ति है,
आनन्द पूर्णतया मन में ही निहित है।

राजन, मन ही मन का रूप है,
न अन्य इन्द्रिय इसके अनुरूप है।
मन की प्रतिष्ठा आकाश ही है,
कल्पना की शरण आकाश ही है।
मन नव - दाम्पत्य का आधार है,
आनन्दहीन जीवन निःसार है।

जनक :

ऋषि, यह आपके उत्तम उच्च विचार,
सहस्र गउए हैं इनका उपहार।

याज्ञवल्क्य :

राजन न धन की मुझे कामना है,
ज्ञानार्थ अर्पित मेरी साधना है।
मेरे पिता की सहज मान्यता है,
शिष्य के धन का हरण न करे।

जनक :

हृदय ही ब्रह्म है, हृदय ही ब्रह्म है,
ज्ञानी विदग्ध ने यह मुझसे कहा है।

याज्ञवल्क्य :

हृदय ही हृदय का रूप है,
न कोई अंग इसके अनुरूप है।
हृदय ही सब प्राणियों का आधार है,
आकाश हृदय की स्थिति का आधार है।
हृदय ही मित्रता का आधार है,
हृदयहीन प्राणी निराधार है।

जनक :

ऋषि, यह आपके उत्तम उच्च विचार,
सहस्र गउए हैं इनका उपहार।

याज्ञवल्क्य :

राजन न धन की मुझे कामना है,
ज्ञानार्थ अर्पित मेरी साधना है।
मेरे पिता की सहज मान्यता है,
शिष्य के धन का हरण न करे।



द्वितीय ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य :

राजन ! सुविज्ञ बहुश्रुत विद्वान आप हैं,
वेदों का गूढार्थ जानते आप हैं,
उपनिषद् समाहित - आत्मा आप हैं,
अतुल सम्पत्ति के स्वामी भी आप हैं।
यहाँ से छूट कर आप जायेंगे कहाँ—
क्या इस विषय पर है कुछ किसी ने कहा ?

जनक :

ऋषिवर, नहीं मैं यह कुछ जानता हूँ,
आप ही से जानना यह चाहता हूँ।

याज्ञवल्क्य :

दक्षिण चक्षु में स्थित एक पुरुष है,
कहते उसे तेजोमय इन्ध है।
इसी को देवगण कहते इन्द्र हैं,
देवगण परोक्ष में रहते लिप्त हैं।
प्रत्यक्ष से रहते सदा द्वेषरत हैं,
अतः उनका आशय न होता स्पष्ट है।
दक्षिण नेत्र का सहचर है नेत्र वाम,
वाम नेत्र की ज्योति है विराट् नाम।

हृदय-कोष में स्थित जो आकाश है,
वही इन का मिलन स्थान है।
हृदयाकाश में भरा रक्तपिण्ड है,
वहीं से इन्हें प्राप्त होता अन्न है।

नाड़ी जो जाती हैं ग्रीवा की ओर,
नेत्रों को देती हैं गति चहुँ ओर।
उठतीं हृदय में हैं नाड़ी असंख्य,
पोषण वही करतीं अंग - प्रत्यंग।

इसी जीव के पूर्व में है प्राण,
पश्चिम तथा उत्तर में भी है प्राण।
दक्षिण दिशा में भी है प्राण,
ऊपर तथा नीचे भी है प्राण।

वर्णन इसका कभी हो पाता नहीं,
ग्रहण इसको कोई कर पाता नहीं।
क्षरण भी इसका कभी होता नहीं,
लिप्त भी यह किसी में होता नहीं।

प्राण में ही प्राण की स्थिति है,
प्राण में ही प्राण की गति है।
राजन न भ्रम हो परलोक का,
मन में न हो भय नरक लोक का।

भय-मुक्त हो राजन, मन आपका,
वास हो अभय ब्रह्म में आपका।

जनक :

हों भयमुक्त ऋषिवर, स्वयं आप भी,
अनोखी महात्मा, प्रज्ञा है आपकी।

ग्रहण किया सार ब्रह्म ज्ञान का,
अनुयायी हुआ मैं अब आपका।
मिथ्या विचारों से मुक्त विश्व हो।
भय-मुक्त मिथिला भरतखण्ड हो।

जम्बु द्वीप में भय न लवलेश हो,
भय - क्रान्त कभी न यह देश हो।
अभय हो, अभय हो, यह सन्देश हो,
ब्रह्म ज्ञान का यही एक उद्देश्य हो।

तृतीय ब्राह्मण

राजा जनक के 'काम - प्रश्न'

जनक :

ऋषि, आपका यह अमर उपदेश,
ग्रहण किया मैंने सहित उद्देश्य।
ऋषियों के वचनों में मुझे बाँधकर,
स्वयं ही कोई अनोखा प्रश्न पूछकर।
स्वयं ही आप दे देते हैं उत्तर,
इस भाँति हो जाता हूँ मैं निरुत्तर।

न बाँधे मुझे आप्त वचनों का भाव,
न रोकें मुझे अपनी विद्वत्ता से आप।
सहज हो जिज्ञासा, हो सहज समाधान,
विकसित हो निश्चित ज्ञान, विज्ञान।

न कुण्ठित करें मेरी प्रज्ञा को आप,
मेरे सहज प्रश्नों का उत्तर दें आप।
इन प्रश्नों को 'काम प्रश्न' मान लीजिये,
इन्हीं का उचित समाधान कीजिये।

याज्ञवल्क्य :

मुझे आपका भाव स्वीकार है,
शुद्ध विज्ञान का यही आधार है।

जनक ।

इस लोक में पुरुष की कौन सी ज्योति है ?

याज्ञवल्क्य :

इस लोक में सूर्य ही पुरुष की ज्योति है,
मनुष्य की क्रियायें इसी के आधीन हैं—
आदित्य - हीन सृष्टि अन्धकार - लीन है।

जनक :

रात्रि में पुरुष की कौन सी ज्योति है ?

याज्ञवल्क्य :

रात्रि में पुरुष की चन्द्र ही ज्योति है,
सब क्रियायें होतीं चन्द्र के आधीन हैं—
चन्द्र - हीन रात्रि अन्धकार में लीन है।

जनक :

अन्धकार पूर्ण रात्रि हो,
दीपक का प्रकाश न हो—
तब पुरुष की कौन ज्योति है ?

याज्ञवल्क्य।

वाणी ही होती उसकी ज्योति है,
वाणी ही पथ - प्रदर्शक अन्धकार में—
प्रशस्त करती मार्ग बिना आधार के।

जनक :

न हो सूर्य, न हो चन्द्र,
न दीप, न कोई शब्द—
कौन हो ज्योति उस काल में ?

याज्ञवल्क्य :

आत्मा ही है ज्योति उस काल में,
उसी से वह जाता सब ओर है—
कर्म करता तथा लौट आता है।

जनक :

आत्मा से क्या है आशय आपका ?

याज्ञवल्क्य :

वही जो सार है ज्ञान-विज्ञान का,
इन्द्रियों से जो है परिवेष्टित—
ज्योति स्वरूप है हृदय में स्थित।

विचरता दोनों लोकों में समान रूप हो,
जाग्रत अवस्था में रहता इच्छा रूप हो।
ध्यानावस्था में विचरता आनन्द रूप हो,
स्वप्न होकर लाँघता दुःख लोक को।

जन्म लेते ही ग्रहण करता देह को,
प्राप्त होता उस काल से ही पाप को।
मृत्यु काल में अथवा ग्रहण कर संन्यास को,
त्याग देता आत्मा पाप के त्रास को।

दो अवस्था हैं लोक तथा परलोक,
उनके मध्य ही में स्थित है स्वप्न लोक।
स्वप्नावस्था में जीव देखता दोनों लोक,
आश्रमानुसार ही दिखते हैं लोक-परलोक।

उसी आश्रम से भोगता पाप, आनन्द,
सुषुप्तावस्था में मिटते जागृति के द्वन्द्व।
स्वप्न में फिर उठते वासना के अंश,
मिटाकर होता उन्हें स्वयं ज्योति अंश।

स्वप्न में नहीं रथ और अश्व का योग,
स्वप्न ही रचता यात्रा का संयोग।
स्वप्न में नहीं आनन्द, मोह, प्रमोद,
विकसित होते किन्तु सभी उद्योग।
नहीं है वहाँ सरिता, सरोवर, कुण्ड,
किन्तु निर्मित होते उनके अनेक झुण्ड।

श्लोक इस विषय में एक निश्चित यथेष्ट,
सुषुप्ति में इन्द्रियाँ हो जातीं निष्चेष्ट।
किन्तु शरीर के असुप्त अंग - प्रत्यंग,
हृदय, श्वास, उदर तथा अन्तरंग।

आत्मा स्वप्न में विचरता उनके संग,
जाग्रति में जगता पुनः इन्द्रियों संग।
हिरण्यमय तेजोमय पुरुष विशाल,
एक हंस निःसंग विचरता दोनों काल।

पालता आत्मा देह को निःसंग,
नहीं वह किन्तु देह में अवरुद्ध।
विचरता मानवी कल्पना के साथ,
हिरण्यमय तेजोमय एक हंस विशाल।

रचता यही विविध विचित्र स्वप्न संसार,
भोगरत आनन्दमय होता बारम्बार।
देखता दारुण भय का व्यापार,
क्रीड़ामय यह है उसका व्यवहार।

दृष्टिगत आत्मा का यह व्यवहार,
किन्तु आत्मा अद्रष्टा सर्वप्रकार।
स्वप्न में विचरण करे आत्मा स्वच्छंद,
न जगाये सहसा, न बनाये रोग प्रसंग।

अन्य आचार्य कहते भली प्रकार,
स्वप्न में दिखता जाग्रति का व्यवहार।
आत्मा स्वयं ही अनुपम तेज, अन्तहीन,
सभी ज्योति इसी आत्मा के आधीन।

जनक :

ऋषि, आपने कहा आत्म ज्ञान का सार,
अब करें हम मोक्ष के विषय में विचार।

याज्ञवल्क्य :

जगत को देख पाप - पुण्य से व्याप्त,
आत्मा सुषुप्ति का सुख करता प्राप्त।
सुषुप्ति में रचता विविध स्वप्न के भाग,
स्वप्न से लौटता फिर सुषुप्ति के मार्ग।

जनक :

ऋषि, कथन यह सत्य तथा निर्विवाद,
मोक्ष के विषय में हो अब संवाद।

याज्ञवल्क्य :

सुषुप्ति से लौटता फिर जाग्रति की ओर,
आत्मा नहीं इनमें बँधता किसी भी छोर।

जनक :

ऋषि, यह है सत्य एक निर्विवाद,
मोक्ष के विषय में हो संवाद।

याज्ञवल्क्य :

जाग्रत घूमता - फिरता पुरुष जो आप,
देखता, करता, फिरता, पुण्य और पाप।
पलट कर जाता स्वप्न की ओर,
होता इस भाँति आनन्द - विभोर।

सरिता के दोनों तीर, मत्स्य की क्रीड़ा - भूमि,
जागरण और स्वप्न भी इसकी विचरण-भूमि।

विचरते व्योम में पक्षी सब ओर,
सन्ध्या को जाते नीड़ की ओर।
वैसे ही जन छोड़ दिवस जंजाल,
ढूँढते निद्रा सुखमय सायंकाल।

मानव - शरीर में विविध नाड़ी - समूह,
हिता, नाम इनका, विचित्र इनका व्यूह।
स्वप्न में रचतीं विचित्र विविध लोक,
यही मानव का है विशाल परलोक।

निद्रा पुरुष का निर्मल शुद्ध स्वरूप,
वासना रहित निर्लिप्त आत्म - स्वरूप।
सब कामनाएँ होतीं इसमें पूर्ण,
शोक-हीन, अकाम, आत्मकाम, सम्पूर्ण।

मिटते मात-पिता तथा लोक-परलोक,
मिटते देव-अदेव, पाप और सब लोक।
मिटते क्रूरतम कृत्यों के सब आरोप,
होता ज्ञान - विज्ञान का भी लोप।

न रहता कुछ भी सृष्टि का व्यापार,
प्राप्त होता सुख असीम अपार।
आत्मा ही स्वयं विचरता अविच्छिन्न,
नहीं उस काल आत्मा से कुछ भिन्न।

नहीं कुछ देखने को अन्य,
यद्यपि दृष्टि की शक्ति असीम अपार।
नही कुछ सूँघने को अन्य,
यद्यपि घ्राण की शक्ति असीम अपार।
नहीं कुछ रस लेने को अन्य,
किन्तु रस-भोग की शक्ति असीम अपार।
नहीं कोई बुलाने को अन्य,
किन्तु वाणी की शक्ति असीम अपार।
नहीं सुनने को कुछ अन्य,
यद्यपि श्रवण की शक्ति असीम अपार।
नहीं मनन योग्य कुछ अन्य,
यद्यपि मन की शक्ति असीम अपार।
नहीं स्पर्श योग्य कुछ अन्य,
यद्यपि स्पर्श की शक्ति असीम अपार।
नहीं जानने योग्य कुछ अन्य,
यद्यपि विज्ञाता की विज्ञाति अपार।

देखता सदा अन्य को अन्य,
सूँघता सदा अन्य को अन्य।
रस लेता सदा अन्य से अन्य,
बोलता सदा अन्य से अन्य।
सुनता सदा अन्य से अन्य,
मनन करता सदा अन्य ही अन्य।
छूता सदा अन्य को अन्य,
जानता सदा अन्य को अन्य।

जल की उपमा से लो ब्रह्म को जान,
एक तथा अद्वैत, यही ब्रह्म का ज्ञान।
ब्रह्मज्ञान ही मनुष्य की परम गति है,
मानव की यही सर्वोपरि सम्पत्ति है।
भूलोक का है यही परम आनन्द,
इसका अंश मात्र ही जीवन का आनन्द।

निकृष्ट भोगवाद के जो शत-शत आनन्द,
दिग्विजयी पूर्वजों का मात्र एक आनन्द।
पूर्वजों के जो शत - शत आनन्द,
कलाविद गायकों का एक आनन्द।
गायकों के जो शत - शत आनन्द,
कर्मयोगी का मात्र एक आनन्द।

कर्मयोगियों के जो शत-शत आनन्द,
ज्ञानी विद्वानों का एक आनन्द।
ज्ञानियों के जो शत-शत आनन्द,
प्रजापति के भी शत-शत आनन्द—
ब्रह्मज्ञानी का मात्र एक आनन्द।

जनक :

ऋषि, यह निर्मल उत्तम शुद्ध विचार,
सहस्र गउएँ इनका उपहार।
करो मोक्ष के विषय में संवाद,
मिटे भ्रम तथा सब वाद - विवाद।

प्रश्न सुन कर हुए ऋषि संत्रस्त,
नृप है अभी भी भ्रमग्रस्त।
समझाया नृप को भली प्रकार,
परलोक है मात्र स्वप्न - संसार।
ब्रह्म होता है ब्रह्म में लवलीन,
नहीं यह आवा-गमन के आधीन।

जो जन्म ले लेता है एक बार,
नहीं उसका जन्म दूसरी बार।
नृप ढो रहा मिथ्या धारणा का भार,
पूछता मोक्ष का मार्ग बारम्बार।

नृप दे चुका है धन भी पर्याप्त,
मेरे प्रवचन हो चुके हैं समाप्त।
करता हूँ प्रयास अन्तिम बार,
ज्ञान दूँ नृप की धारणानुसार।

याज्ञवल्क्य।

स्वप्न में जीव जो देखता व्यवहार,
देखता विस्तृत पाप - पुण्य व्यापार।
लौट कर फिर आता जागृति की ओर,
यही दिखता उसे प्रत्यक्ष सब ओर।

जीव छोड़ता इस देह को जिस काल,
श्वास - प्रश्वास शब्द करते अति विकराल।
पका फल गिराता वृक्ष जिस प्रकार,
वृद्ध को छोड़ते कृश अंग उसी प्रकार।
त्याग कर मोह इन शिथिल अंग-प्रत्यंग का,
जीव खोजता मार्ग अन्य योग प्रसंग का।

जैसे नृप का सभा - मण्डल से प्रस्थान,
भृत्य कहते सादर और सहित सम्मान।
वैसे ही इन्द्रियाँ प्राण का करतीं सम्मान,
विदा करतीं उसको उसके अनुरूप विधान।



चतुर्थ ब्राह्मण

नृप धारण करो यह ध्रुव अटल सत्य विचार,
एक बार जो जन्मा, नहीं जन्मता दो बार।
जिसे लोग कहते, मानते परलोक—
मात्र स्वप्नावस्था का कल्पना लोक।

प्रेत होने पर आत्मा होती आत्मा में विलीन,
आत्मा का ज्ञान तथा संज्ञा होती यहीं विलीन।

किन्तु जो विचारते अन्य प्रकार,
उनके चिन्तन का पुनर्जन्म आधार।
त्यागती आत्मा देह को जिस काल,
इन्द्रियाँ त्यागतीं निज कार्य उस काल।

हृदयोन्मुखी होतीं आत्मा के साथ,
हृदय का चमकता है तब अग्रभाग।
इसी महाप्रकाश के ही साथ,
टूटता आत्मा, देह का है साथ।

वहिर्गमन करता यह चक्षु के द्वार,
अथवा जाता कर्ण - नासिका के द्वार।
विद्या, विज्ञान, कर्म जाते उसके साथ,
पूर्व जन्मानुभूति भी जाती उसके साथ।

इस प्रकार त्याग कर निष्चेष्ट शरीर,
आत्मा धारता तेजोमय नवीन शरीर।
होता प्रजापति, मित्र, गन्धर्व, देव रूप,
अथवा लेता किसी अन्य प्राणी का रूप।

निश्चय ही आत्मा ब्रह्ममय, विज्ञानमय,
मनोमय, प्राणमय, नेत्रमय, श्रोत्रमय।
पृथ्वीमय, जलमय, वायु - आकाशमय,
तेजोमय, तमोमय, काममय,अकाममय।

क्रोधमय, शान्तिमय, धर्माधर्ममय,
लोकमय, परलोकमय, सर्वमय।
कामनामय, सकल सृष्टि का व्यापार,
साधु, पापी भी होते कामनानुसार।

कर्म - फल का कामना ही एक आधार,
दूसरी देह भी प्राप्त होती कर्मानुसार।

किन्तु जो जन सर्वदा निष्काम,
आत्मकाम तथा आप्तकाम।
वह तत्काल होता ब्रह्म में लवलीन,
न होता वह आवागमन आधीन।

जो हृदय - स्थित कामना देता त्याग,
वही पुरुष होता ब्रह्मविद् महाभाग।
रहता वह सदा ब्रह्मानन्द में व्याप्त,
होता अशरीरी अमरत्व करता प्राप्त।

वह प्राणमय जीवन - मुक्त महान्,
वह ब्रह्मरूप तेजोमय विद्वान।
सर्प का जो त्यक्त केंचुल के प्रति भाव,
ब्रह्मवेत्ता का वैसा ही देह से लगाव।

जैसे अणु का अस्तित्व है सर्वत्र,
वैसे ही ब्रह्म - पथ फैला है सर्वत्र।
मुझे मिला यह विस्तृत प्राचीन ज्ञान,
अन्य ऋषि भी इसे जानकर हुए महान्।

यही है स्वर्ग प्राप्ति का खुला द्वार,
जीवन - मुक्त का यही मात्र आधार।

ब्रह्म - पथ के कहे जाते विविध रंग,
ब्रह्मविद् ब्राह्मण का है यह परमानन्द।

जो रहते अविद्या में लीन,
होते अन्धकार के आधीन।
किन्तु जो रहते विद्या में ही लीन,
होते घोरतर अन्धकार में लीन।

अन्धकार लोक जो सर्वदा आनन्द विहीन,
लिप्त उनमें होते अज्ञानी विद्याहीन।

किन्तु जो जन हो गये आत्म-स्वरूप निष्पाप,
मिटती उनकी इच्छा तथा लौकिक संताप।

जिसके हृदय में हो आत्मा का आलोक,
वही सर्वज्ञ कर्ता, उसी का लोक-परलोक।

यदि जीवन में हो ब्रह्म का साक्षात्कार,
प्राप्त हो अमरत्व, अन्यथा दुःखमय संसार।

जिसने किया आत्मा का साक्षात्कार,
होता त्रिकालज्ञ, जाता निन्दा स्तुति के पार।

आत्मा ज्योतियों की ज्योति, स्वामी काल का,
आयुदाता तथा अमरत्व विश्व विशाल का।

आत्मा में व्याप्त महाभूत तथा मनुष्य लोक,
वही ब्रह्म, अमरत्व सब उसी का आलोक।

जो जानते इस प्राण के भी प्राण को,
चक्षु के भी चक्षु को, घ्राण के भी घ्राण को।
यह श्रोत्र का श्रोत्र, मन का है अधिष्ठाता,
निश्चित पुरुष पुरातन तथा आदि नियन्ता।

मन द्वारा ही होता ब्रह्म साक्षात्कार,
नहीं है भिन्न इससे अन्य कोई विचार।
ब्रह्म से भिन्न है यह मृत्युमय संसार,
अन्य चिन्तन का नहीं कोई भी आधार।

आत्म - दर्शन केवल मनन से संभव,
यह अचिन्तनीय, अजन्मा, अटल ध्रुव।

मोक्षदा बुद्धि से जानकर ब्रह्म को,
व्यर्थ शब्द-जाल से न बढ़ाये भ्रम को।

आत्मा यह अजन्मा महान्,
विज्ञानमय इन्द्रियों में विद्यमान।
प्रतिष्ठित हृदयस्थ आकाश में,
अनुशासित करता यह ब्रह्माण्ड है।
पुण्यों से न बढ़ता इसका आकार है,
पाप से भी न घटता इसका आधार है।
यह भूतेश्वर भूतादिभूत भूतपाल,
सब लोकों के मध्य एक सेतु विशाल।

कुछ जान लेते इसे ज्ञान - विज्ञान से,
आहार, संयम तथा तपस्या दान से।
ब्रह्म हेतु संन्यासी करते सर्वस्व त्याग,
ग्रहण करते भिक्षा-मार्ग देह रक्षणार्थ।

त्यागते पुत्र, धन, लोक की कामना,
एकाग्र चित्त हो रहते सदा शान्तमना।
नेति - नेति द्वारा ही करते ब्रह्म विचार,
पकड़ में न आता अनासक्त, निर्विकार।

वन्धन रहित न व्यापे इसे पुण्य - पाप,
न कर्माकर्म, न हर्ष, न देह का संताप।

ब्रह्मज्ञानी की महिमा अपरम्पार,
कर्म नहीं है ब्रह्मज्ञानी का आधार।
नहीं यह करता कभी पापमय व्यवहार,
वह शांत, संयमी, एकाग्रचित्त, निर्विकार।

सब प्राणियों से करता संयत व्यवहार,
त्यागे शुभाशुभ कर्म, जाता मृत्यु से पार।
संशयहीन, पाप रहित, रजोगुण विहीन,
ब्रह्मवेत्ता होता ब्रह्म में लवलीन।

सम्राट्! यह कहा मैंने ब्रह्म ज्ञान।

जनक :

ऋषि! यह राज्य करता मैं दान,
विश्व में प्रसारित करो यह ज्ञान—
घर-घर में हो अभय ब्रह्म का ज्ञान।

●

'सुन कर विचार जनक हुए ध्यानमग्न,
विषय के गूढ़ार्थ पर लगे करने मनन।
सर्प का त्यक्त केंचुली के प्रति जो भाव,
ब्रह्मवादी का उतना ही देह से लगाव।
इसी भाव से नृप हो गए अभिभूत,
इसी भाव को माना मोक्ष का अग्रदूत।
पल भर में मिटे नृप के सभी सन्देह,
तत्क्षण जनक की संज्ञा हुई विदेह।'



डॉ० शिवशरण शर्मा द्विवेदी
एम. ए., डी. फिल., शास्त्री (संस्कृत)
एम. ए., पीएच. डी. (हिन्दी), एल-एल. बी.
निवृत्त - प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय

डॉ. कमलकिशोर जो ने बृहदारण्यकोपनिषद् का हिन्दी में काव्यानुवाद प्रस्तुत करके हिन्दी भाषी समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है। ऋषियों की अनेक पीढ़ियों के चिन्तन का सार इसमें सन्निहित है। विभिन्न प्रकार के भयों, भ्रमों एवं प्रचलित मिथ्या धारणाओं को दूर भगाकर मानव को महामानवत्व की ओर अग्रसर करने वाले इस उपनिषद् के ज्ञान को जन - सामान्य के लिये सुलभ करने का यह पावन प्रयास निश्चित ही अभिनन्दनीय है।

प्राचीन भारतीय ऋषियों के विज्ञान-सम्मत चिन्तन को हृदयंगम करने हेतु जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है वह डॉ. कमलकिशोर में है। इससे ही इस महाग्रंथ के गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट करने में सफल हुए हैं। इससे पूर्व वे गीता की 'गीता प्रतिपादित टीका' भी लिख चुके हैं, जो आध्यात्मिक चिन्तकों को एक अच्छी देन है।

आशा है, हिन्दी के पाठक इस ग्रन्थ के माध्यम से बृहदारण्यक जैसे श्रेष्ठ उपनिषद् का ज्ञान - लाभ करने हेतु इसे प्रसन्नतापूर्वक अपनायेंगे। कामना यही है कि यह ग्रंथ जनता में अधिकाधिक प्रचार - प्रसार प्राप्त करने में सफल हो।

—शिवशरण शर्मा द्विवेदी

31, विनय नगर (प्रथम)
जेल मार्ग
ग्वालियर - 474012

भारत भूषण त्यागी

एम. ए.; साहित्यरत्न

वैदिक धर्म विशारद, सिद्धान्त शास्त्री

पूर्व - प्राचार्य

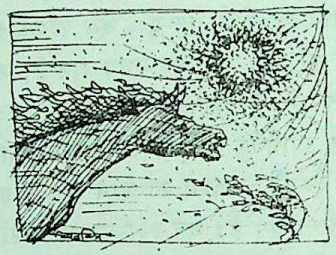
हमारी संस्कृति आरण्यक संस्कृति है। वहाँ विस्तृत गगनांगन है। वहाँ यांत्रिक वातावरण का शब्द - प्रदूषण नहीं है। विराट् दर्शन होने से यह चिन्तन अन्ध-परम्पराओं, गतानुगतिकता और कूप - मण्डूकता से मुक्त है।

यह वह ब्रह्मज्ञान है, जिस पर मृत्युंजय पथिक चलते हैं। अभिनिवेश अर्थात् मृत्यु-शंका से यह परे है। यह ऐसा अभय-दान है, जो चर-अचर का अभय प्रदाता है। इस काव्यान्तर में, बृहदारण्यक उपनिषद् को, उदात्त मन्थन द्वारा गेय बना दिया गया है। यह उपनिषद् साहित्य की अमरता का प्रतीक है। अध्यात्म-पथ के पथिकों हेतु यह ज्योति - स्तम्भ का काम देगा। इसमें अनेक पीढ़ियों की सार-ग्रहणी मेधा का ज्वलन्त रूप है। जब स्वाध्यायशील पाठक इस ग्रन्थ का पाठ करेंगे, तो वे ऋषियों की गिरा में मंत्रमुग्ध हो गुनगुना उठेंगे—'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।'

यह ग्रन्थ पंच महायज्ञ—1. देवयज्ञ, 2. ऋषियज्ञ, 3. नरयज्ञ अर्थात् अतिथि सत्कार, 4. पितृयज्ञ अर्थात् परिवार का भरण - पोषण, 5. भूतयज्ञ अर्थात आश्रित पशु - पक्षियों को अन्नदान का वर्णन करता है तथा इसे ब्रह्मज्ञान प्राप्ति का साधन मानता है। यहाँ पिता पुत्र को संस्कारित करता है कि 'तू ब्रह्म है, तू यज्ञ है, तू लोक है। जो पाठ मैंने पूरा नहीं किया वह तू पूरा करेगा, जो यज्ञ मैं न कर सका वह तू करेगा, जो लोक-संग्रह का कार्य मैं न कर सका वह तू करेगा।' इन्हीं संस्कारों में जाति - जीवन की अमरता के बीज हैं।

अन्त में, मैं तपोपूत साधकों को बार - बार नमन करता हूँ तथा पाठकों से विनीत निवेदन है कि इस ग्रन्थ - रत्नाकर में बार - बार गोते लगा, रत्नों को प्राप्त करें।

— भारत भूषण त्यागी



'सर्वदा ही गतिमयी, अश्वरूपा है मही
आदि इसका अन्त इसका, है गीत एक अनन्त का।'